चार फूल

(पण्डित शिवनाथ काटजू)

ધીરુભાઈ ઠાકરને
સપ્રેમ
[illegible]

[illegible]
૮-૨-૧૯૬૧

खोए फूल

लेखक

पंडित शिवनाथ काटजू

प्रकाशक

मार्कण्डेय काटजू

२५ एडमांस्टन रोड, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण] १९६७ [मूल्य रु० २=००

अनुक्रमणिका

+++: ० :++++

शेष कथन

"बादल में चाँद" की पाण्डुलिपि मुद्रणालय में थी, परन्तु फिर यही निश्चय किया कि वह एक आकार का उपन्यास है। उसे स्वतन्त्र रूप से प्रक करना उचित होगा। इस कारण "बादल में चाँ इस पुस्तक में सम्मिलित नहीं कर रहा हूँ, उथान में दो कहानियाँ, जो मैंने कुछ सप्ताह पूर्व ही हैं, इस संग्रह में शामिल कर दी हैं।

"देवता" पहिले लिखी थी और उसके पश्चात् 'त्री।" "देवता" की शैली और उसका भाव रचनाओं से कुछ पृथक है। इसी कारण उसे अन्त में ही रखा है। अब इस पुस्तक में मेरे पिछले ३९ साल के जीवन के कई कालों की रचनाएं आई हैं। प्रथम पाँच कहानियाँ मेरे जीवन के नवप्रभात काल, "एक प्रिय साथी" प्रौढ़ काल, "देवता" और "गंगोत्री" मध्याह्न काल की रचनाएँ हैं। आयु के प्रवा के साथ

साथ जीवन के दृष्टिकोण में भी कुछ परिवर्तन आना स्वाभाविक है। संभवतः इन बदलते हुए भावों का प्रभाव इन रचनाओं में दिखे।

—शिवनाथ काटजू

प्रयाग
मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष १० सं० २०२३
२२ दिसम्बर १९६६



लेखक (पण्डित शिवनाथ काटजू)—सन् १९६६ में

प्रस्तावना

इलाहाबाद के हाईकोर्ट के जज पण्डित शिवनाथ काटजू का स्नेह प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ है। बरसों से मैं उनके स्नेह का सुख प्राप्त करता आया हूँ, परन्तु मैं यह नहीं जानता था कि वे अपनी छात्रावस्था में भी साहित्य के प्रेमी थे। इधर उन्हें अचानक अपनी पुरानी डायरियों के पढ़ने का अवसर मिला। इनसे उन्हें अपनी पहले की साहित्यिक गतिविधि का स्मरण हो आया और उन्होंने अपनी पुरानी रचनाओं की खोज की। उन्हें एक उपन्यास और कुछ कहानियाँ मिल गईं। मुझे उनके सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनको सुनकर मैं बहुत ही चकित हुआ।

इतने पुराने समय से मैं उनके सम्पर्क में रहा, परन्तु भूलकर भी मैं न जान सका कि वे अपने लड़कपन में साहित्य के ऐसे प्रेमी थे! उनकी उक्त रचनाएँ सुनकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। ये सभी रचनाएँ अपना विशेष महत्व रखती हैं। इनमें साहित्यिक रस अपने ढङ्ग का निराला है। इतनी पुरानी होती हुई भी इनका अनूठा साहित्यिक रस पाठक को आह्लादित कर देता है। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि ये सभी रचनाएँ पुस्तक-रूप में छापी जा रही हैं।

इन रचनाओं के पढ़ने से जान पड़ता है कि काटजू साहब उस समय कितने साहित्य-रसिक थे। 'साहित्य-रसिक' कहने का मेरा मतलब यह है कि उनके साहित्य में सत्यनिष्ठा कूट-कूट कर

भरी हुई थी। बनावटी बातों के लिए स्थान नहीं था और उसमें सरसता की पर्याप्त ध्वनि थी। इन रचनाओं के पढ़ने में जो रस मिलता है, वह विलक्षण है। इनमें सत्यता की जो ध्वनि है, वह रचनाओं को अद्‌भुत बना देती है। जगह-जगह पर लेखक की सत्यता की भाव-भङ्गिमा झलकती है। पाठक उसके स्पष्ट कथन से मुग्ध हो उठता है।

इस प्रकार के साहित्य की रचना बहुत कम प्रकाश में आती है और जो प्रकाशित भी होती हैं, वे इस रूप में नहीं प्रकाशित होतीं। प्रस्तुत प्रकाशन से लेखक के प्रारम्भिक काल की रचना-शैली पर तो प्रकाश पड़ता ही है, परन्तु सबसे अधिक प्रकाश पड़ता है उसकी भाव-व्यञ्जना पर। इससे पाठकों का केवल मनो-रंजन ही नहीं होता, किन्तु उन्हें इस बात का भी परिचय मिलता है कि लेखक में समय-समय पर सूझ-बूझ की कैसी गति प्रवाहित हुई थी। काटजू साहब की इन रचनाओं के प्रकाशित हो जाने से हिन्दी के पुराने लेखकों पर भी प्रभाव पड़ेगा और जिन लेखकों के पास उनकी तत्कालीन रचनाएँ बची रह गई होंगी, वे भी उनको प्रकाशित करके साहित्य की अभिवृद्धि करने को उत्साहित हो सकेंगे।

काटजू साहब की इन प्रकाशित रचनाओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहले भाग में 'सरला', 'मुरझाई हुई कली', 'शादी और उसके बाद', 'होली' और 'कोप'—ये ५ रचनाएँ हैं। ये सभी कहानियाँ हैं। दूसरे भाग में 'एक प्रिय साथी' शीर्षक संस्मरण है। यह अपने ढङ्ग का अनूठा है। इसमें काटजू साहब ने अपने प्यारे कुत्ते का वर्णन किया है। भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी विवरण से यह, विलक्षण निबन्ध ओत-प्रोत है। तीसरे भाग में 'गङ्गोत्री' और 'देवता' शीर्षक रचनाएँ हैं। इनमें

से 'गङ्गोत्री' बड़ा रोचक यात्रा-वर्णन है, जिसमें काटजू साहब ने 'गङ्गोत्री' और 'यमुनोत्री' की अपनी यात्राओं का विवरण बड़ी रोचक शैली में दिया है। इन पवित्र स्थानों की यात्रा आपने बड़ी श्रद्धा और उमङ्ग के साथ की है। गङ्गोत्री-यात्रा में आपने एक स्त्री यात्री का बड़ा आकर्षक वर्णन लिखा है। यात्रा के मार्ग में पड़नेवाले भिन्न-भिन्न स्थानों और प्राकृतिक दृश्यों का सजीव वर्णन करते हुए काटजू साहब ने उक्त स्त्री की जो करुण कथा लिखी है, वह अत्यधिक भावपूर्ण है। जिस धैर्य और साहस के साथ उस पतित्यक्ता स्त्री ने अपना विवरण प्रस्तुत किया है, वह बहुत ही भावोत्पादक है। गङ्गोत्री की यात्रा के समान ही यमुनोत्री की यात्रा का वर्णन भी काटजू साहब ने बड़ी रोचक और आह्लादपूर्ण शैली में किया है। इस यात्रा-वर्णन में एक अन्य स्त्री का जो उल्लेख हुआ है, उसका वर्णन पूरा नहीं आया है। उसे काटजू साहब अलग से बाद में लिखेंगे। तब यह यात्रा-विवरण पूर्ण होगा। इसमें सन्देह नहीं कि यह लेख रोचक ही नहीं सिद्ध होगा, किन्तु पाठकों पर इसका प्रभाव भी पड़ेगा।

अन्तिम निबन्ध 'देवता' में अत्यन्त मर्मस्पर्शी तथा उद्-बोधक आत्मकथा है। इसमें देवता की भाव-भंगिमा और उसकी शास्त्रीय धारणा का काटजू साहब ने प्रामाणिक रूप से सङ्केत किया है। अन्त की ये दोनों रचनाएँ हाल की ही लिखी हुई हैं। इस प्रकार काटजू साहब के साहित्यिक जीवन के प्राथ-मिक वर्षों, बीच के वर्षों और वर्तमान समय के विचारों का परिचय देनेवाली रचनाओं का समावेश बहुत उत्तम ढङ्ग से इस संग्रह में हो गया है, जो एक महत्व की बात है।

काटजू साहब की रचनाओं का यह अनूठा संग्रह तो है ही,

साथ ही चरित्र पर उत्तम प्रभाव डालनेवाला है। क्या ही अच्छा होता कि काटजू साहब की डायरियाँ भी प्रकाश में आ जातीं। उनके सम्बन्ध में उन्होंने जो चर्चा की है, उससे ज्ञात होता है कि उनमें उन्होंने अपने मनोभावों को बड़े चाव के साथ लिखा है। डायरी से लेखक की मनोवृत्ति का अच्छा परिचय मिलता है। खेद है कि इस संग्रह में काटजू साहब की डायरियों का यथोचित समावेश नहीं हो सका। इसमें सन्देह नहीं कि आपका यह संग्रह सुरुचिपूर्ण पाठकों के द्वारा ध्यान से पढ़ा जायगा और वे इसके महत्त्व को सहर्ष स्वीकार करेंगे।

—देवीदत्त शुक्ल

(भूतपूर्व सम्पादक 'सरस्वती')

प्रयाग

पौष शुक्लाष्टमी, २०२३

२० जनवरी, १९६७

विषय-प्रवेश

ये कहानियाँ, जिनका संग्रह निकल रहा है, वास्तव में मेरे खोए हुए फूल हैं, जो मुझे लगभग ३८ वर्ष बाद फिर मिल गए। कुछ धूमिल स्मृति अवश्य थी कि मैंने बाल्यकाल में एक दो कहानियाँ लिखी थीं। वे कैसी थीं, उनमें क्या था, यह सब भूल चुका था। पन्द्रह दिन पूर्व मुझे अपने पुराने काग़ज़ों में अपनी लिखी हुई १६२५ ई० की डायरी मिली। यह पोस्टकार्ड साइज़ की है और इसमें अँगरेज़ी में दिनचर्या का वर्णन है। मैं उसे पूरा पढ़ गया। अन्त में लिखा था कि यह डायरी छोटी पड़ती है, अब अगले वर्ष से बड़ी डायरी में लिखूँगा और उर्दू में लिखूँगा। मैंने छानबीन की और एक अलमारी में मुझे फ़ुल्सकेप साइज़ की डायरी के पाँच रजिस्टर मिले। दो १६२६ ई० के, दो १६२७ ई० के और एक १६२८ ई० का। प्रत्येक साल में लगभग ४०० पृष्ठ लिखे हुए हैं।

मैंने चालीस साल के बाद अपनी डायरी पढ़नी शुरू की और उसमें ऐसा लीन हुआ कि शायद ही किसी पुस्तक को—'चन्द्रकान्ता सन्तति' को छोड़कर—इतनी तल्लीनता से पढ़ा हो। प्रातःकाल से अध्ययन आरम्भ होता और नौ बजे तक चलता। शाम को वापिस आने पर ४॥ बजे सायंकाल से फिर पढ़ना शुरू करता और आधी रात तक पढ़ता। यही क्रम तीन चार दिन चला, जब तक कि पाँचों जिल्दों का पाठ समाप्त नहीं हुआ। १६२८ ई० की डायरी में अप्रैल के बाद से लिखना बन्द हो गया था। क्यों ऐसा किया, इसका कोई कारण नहीं मिला।

यकायक की यह रुकावट ऐसी लगी, जैसे किसी ने चलती गाड़ी से ज़बरदस्ती बाहर फेंक दिया हो। इस चार दिन की पढ़ाई ने मुझे अधीर कर दिया। डायरी में दैनिक बातों का वर्णन है। मैंने दिन भर क्या किया, किससे मिला क्या बातें हुईं, क्या पढ़ा, क्या खेला, क्या सोचा, इन सबको विस्तार से लिखा है। ख़ास-ख़ास बातों पर समाचार-पत्रों की कटिंग भी चिपकी हैं। खेल, व्यायाम, मुशायरा विशिष्ट व्यक्तिगण, राजनैतिक समारोह, अपनी मित्र-मण्डली, जिसमें सभी प्रकार के लड़के थे, कालेज के प्रोफ़ेसर, उनके लेक्चरों का वर्णन—ऐसे सभी प्रसंग मैंने डायरी में लिखे हैं। इन्हें पढ़कर मैं काल के ग्रास में गए चालीस वर्ष बीते समय में फिर पहुँच गया।

यों तो कुछ पिछली बातें कुछ-कुछ याद रहती हैं और कुछ ऐसी बातें, जिनसे जीवन का विशेष सम्बन्ध रहा हो, अधिक स्पष्टता से याद हों लेकिन चालीस वर्ष पूर्व प्रत्येक दिन में क्या-क्या विचार आए थे, और किन स्वप्नों ने आकृष्ट किया था, यह किसे याद रहेगा? जीवन की धारा में कुछ पिछला और नया जल मिलता रहता है और यह क्रमागत आगे बढ़ती जाती है। यदि इस बहती धारा से अपने आपको खींचकर अतीत में डूबे चालीस वर्ष पूर्व के प्रवाह में फिर डाला जाय, तो यह कठोर मानसिक वेदना का कारण ही नहीं अभिशाप भी बन सकता है। उस समय की कल्पनाओं का ज्ञान होकर बाद के जीवन की घटनाओं पर ध्यान जाता है। क्या-क्या सोचा था—क्या हुआ! कितनी आशाएँ और सुन्दर स्वप्न चूर-चूर हो गये! कितनी आकांक्षाओं पर पानी फिर गया! कुछ अंशों में किसी लक्ष्य की पूर्ति भी हुई, तो उस सम्बन्धी भावनाओं के अंकुर भी उसी बीते हुए काल की कल्पनाओं में दिखते हैं। परन्तु जहाँ तारों को तोड़ने का प्रयास था, वहाँ फलस्वरूप कुछ थोड़ा बहुत

मिला भी, जिसका अधिक महत्व नहीं है, तो उससे होता ही क्या है। यह अवश्य हुआ कि चाहे क़दम कांटों पर रहे लेकिन मस्तिष्क अधिकतर नभो मंडल की ओर ही रहा।

(सर है सूए अफ़लाक, क़दम कांटों पर)

यह दैवी देन ही थी कि उन कल्पनाओं और आकांक्षाओं ने, जो जीवन को सार्थक करती हैं, कभी साथ भी छोड़ा तो बहुत थोड़े समय के लिए। कोई अधिक चेष्टा न करने पर भी सफल होता है, कोई सबल चेष्टा से सफल होता है और ऐसे भी हैं, जिनकी चेष्टाएँ विपरीत परिस्थितियों से टकरा कर, निष्फल रह जाती हैं। यहीं संस्कारों के सामने झुकना पड़ता है। जीवन की लीला रहस्यमयी है। मानव की सार्थकता इसी में है कि वह हर परिस्थिति का वीरता से सामना करे और हार-जीत महिमा मयी को अर्पित कर दे।

मेरी डायरी में उन शिक्षकों की चर्चा है, जिन्होंने मुझे पढ़ाया। इलाहाबाद के गवर्नमेण्ट इन्टरमीडिएट कालिज में मुझे जिनसे प्रेरणा मिली, वे प्रोफ़ेसर मकसूद हसन नक़वी और मौलाना जलाल उद्दीन जाफ़री थे। प्रोफ़ेसर नक़वी ने इतिहास में मुझे वह रुचि दी, जो आज तक मेरे साथ है। मौलाना जाफ़री फ़ारसी पढ़ाते थे। प्रयाग विश्वविद्यालय में मेरे उल्लेखनीय शिक्षक स्वर्गीय पंडित अमरनाथ झा, प्रोफ़ेसर देव, डाक्टर दस्तूर, स्व० सर शफ़ाअत एहमद खां, डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, स्व० डाक्टर बेनीप्रसाद और डाक्टर बनारसी दास थे। विश्व-विद्यालय के पुस्तकालय और इलाहाबाद पब्लिक लाइब्रेरी में भी काफी समय बीतता था। यूनीवर्सिटी में प्रवेश करते ही मैं यू० टी० सी० में भरती हो गया और सैनिक शिक्षा प्राप्त करने लगा। उन दिनों इलाहाबाद में हिन्दुस्तानी पलटन हैदराबाद रेजिमेन्ट

थी, जिसमें लफ़्टेनेन्ट (बाद में जेनरल) थिमय्या थे और अँग्रेजी पलटन वूस्टंर्ज़ और उसके बाद चेशायर रेजिमेन्ट थी। इनसे और हमारी यू० टी० सी० से काफ़ी सम्पर्क था। मैं यू० टी० सी० की बोक्सिंग टीम में भी था और वूस्टंर्ज़ तथा चेशायर की टीमों से कभी-कभी टक्कर रहती थी। मैं घोड़े की सवारी करता था और घर ही में एक पहलवान से कुश्ती भी सीखता था। इसके अतिरिक्त मित्र-मंडली भी विस्तृत थी—क्रिकेट और टेनिस में भी रुचि थी। उन दिनों अच्छी और बुरी किताबें भी बहुत पढ़ीं। सिनेमा का भी काफ़ी चक्कर लगता था, जिस पर पिता जी से बहुत डाँट पड़ती थी। इन सभी बातों का वर्णन डायरी में मिलता है।

पुरानी बहुत सी बातें मैं भूल ही गया था। डायरी से ही पता चला कि मैंने १५-१६ वर्ष की अवस्था से लेख लिखने शुरू किए थे। लाहौर की विधवा सहायक सभा की एक मासिक पत्रिका में भी कुछ लेख भेजे थे। उसकी कोई प्रति मेरे पास नहीं है। लाहोर से 'बहारे कश्मीर' उर्दू मासिक पत्रिका निकलती थी। उसमें भी पहिले एक दो लेख भेजे होंगे लेकिन उसकी जानकारी अब नहीं है। डायरी से ही मालूम हुआ कि उसमें 'सरला' के अतिरिक्त और कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं। 'बहारे कश्मीर' के सम्पादक स्व० पं० मनमोहन कृष्ण वली थे। उनके आग्रह से मैंने कई कहानियाँ लिखीं, जिसका डायरी में उल्लेख है। मैंने फिर अपने पुराने कागज़ों में खोज की और मुझे कुछ अंक मिल गये, जिनमें मेरी कहानियाँ छपी थीं। जुलाई १९२९ के बाद का कोई अंक नहीं मिला। १९२८ की अप्रैल के बाद मेरी डायरी भी समाप्त हो गई। मैं नहीं कह सकता कि उन दिनों मैंने और कहानियाँ लिखीं या नहीं।

'बादल में चाँद' बहारे कश्मीर में क्रमागत ६ अंकों में

निकला था। जिस अंक में उसका आखिरी अंश छपा था, उसमें निम्नलिखित सम्पादकीय नोट था :—

'इस माह के बहारे कश्मीर में 'बादल में चाँद' की आखिरी क़िस्त दर्ज की गई है। रक़िमे फ़िसाना पंडित शिवनाथ काटजू होनहार नौजवान हैं जो कि अभी तालिब-इल्म ही हैं लेकिन ख़ुदा के फ़ज़्ल से आला दिमाग़ पाया है और ब लिहाज़ जिद्दत तराज़ी और सबक़ आमोजी के यह फ़िसाना असहाबे फ़न की नज़रों में ख़ास वक़अत से देखा जायगा और अभी से ज़हानत और ज़कावत का यह आलम है तो किसी रोज़ यह नौजवान भी जादू निगारों की सफ़े अव्वल में होगा। ज़बान में अभी कुछ ख़ामी है लेकिन यह नौ उमरी का बाएस है। मुतालए मज़ीद और मश्क़े तहरीर से ख़ुद बख़ुद रफ़ा हो जाएँगी।'

वली साहब की सद्भावना ने मेरा साथ नहीं दिया। वे शीघ्र ही 'बहारे कश्मीर' के सम्पादन से अलग हो गये और यह मासिक पत्रिका भी समाप्त हो गई—फिर कई साल तक न मैंने कहानियाँ लिखीं, न मुझे किसी ने लिखने के लिए कहा। जैसे-जैसे आयु बढ़ती गई, जीवन अधिक कोलाहल-पूर्ण होने लगा। मैं जादू निगारों की सफ़े अव्वल तो अलग रही, उसकी छाया से भी कोसों दूर था।

जितनी कहानियाँ 'बहारे-कश्मीर' से उद्धृत की गई हैं, वे सभी 'सरला' को छोड़कर, उर्दू में लिखी गई थीं। 'सरला' को हिन्दी में लिखा था लेकिन यह 'बहारे कश्मीर' में उर्दू लिपि में छपी थी। 'सरला' प्रथम चेष्टा थी। ये सब कहानियाँ मैंने अपनी १७ वर्ष से लेकर १६ वर्ष तक की आयु में लिखी थीं। उस काल में जीवन का अनुभव अधिक क्या हो सकता था। बहुत कुछ कल्पना के आधार पर लिखा था। अपनी जिन भावनाओं और

जिस दिनचर्य्या का मैंने वर्णन किया है, उनकी कुछ झलक इन कहानियों में दिखेगी।

१६३७ के बाद मेरे जीवन में जिन्होंने महान् परिवर्तन किया, वे 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक 'कौलाचार्य' पंडित देवीदत्त जी शुक्ल हैं। इनकी कृपा से मैंने तान्त्रिक योग के क्रिया-कलाप में प्रवेश किया। यह दूसरा ही विषय है, जिसका इतना संकेत ही काफ़ी है। प्रयाग से 'शाक्त सम्मेलन' की मुखपत्रिका 'चण्डी' में यदा-कदा मेरे लेख निकले लेकिन वे तन्त्र-सम्बन्धित थे। आज से १५-१८ वर्ष पूर्व मैंने हिन्दी में 'चित्तौड़ की महानिशा' लिखी थी, जो एक साप्ताहिक में और 'चण्डी' में भी प्रकाशित हुई। वह जहाँ अपनी जगह एक पूर्ण कहानी है, वहाँ एक उपन्यास के आरम्भ का भाग भी है। उसे इस संग्रह में शामिल नहीं कर रहा हूँ। इच्छा यही है कि समय मिलने पर उसे पूर्ण करके उपन्यास के रूप में प्रकाशित करूँ। 'जीवन का एक साथी' १६५३ में 'चण्डी' में प्रकाशित हुआ था। यह उस साथी का वर्णन है, जिसने मुझे अपने अल्प काल के जीवन में मोह लिया था। इस लेख के सभी पात्र मेरे परिवार के व्यक्ति हैं। दुगवेकर जी का पत्र भी वही है, जो उन्होंने मुझे भेजा था।

इस संग्रह में मेरे युवाकालीन प्रथम चरण के उद्गार हैं। इसी कारण इसे प्रकाशित करवा रहा हूँ। भले ही साहित्यिक दृष्टि से इसमें कुछ न हो।

मैं श्रीमान् पं० देवीदत्त जी शुक्ल का बहुत आभारी हूँ। उन्होंने मेरा अनुरोध स्वीकार करके अपनी प्रस्तावना से इस पुस्तक को भूषित किया है।

प्रयाग

आश्विन कृष्ण द्वादशी २०२३

(अक्टूबर ११,१६६६)

—शिवनाथ काटजू

सरला

(१)

'हे सरला, तुम कहाँ ?'

मैं कश्मीर के शालामार बाग की बारादरी में बैठा हुआ इस रमणीक स्थान की खूबसूरती को अतृप्त आँखों से देख रहा था। संसार की लीला विचित्र है। कोई समय था मुग़ल सम्राट् जहाँगीर देहली की गर्मी से बचने के लिए कश्मीर में बड़े चाव से प्रवेश करता था और इन बाग़ों में विश्राम करता था। शाला-मार बाग़ भी इसी ने बनवाया था। अब न जहाँगीर है, न मुग़लिया राज। ये स्थान उनकी याद अवश्य दिलाते हैं। परन्तु वह समय भी आयेगा, जब ये भी इस तरह के न रहेंगे।

मैं यह सोच ही रहा था कि यकायक एक योगिनी मेरे सामने से जाती हुई दिखाई दी और अपने ही आप ऊपर लिखे शब्द मेरे मुँह से निकल पड़े।

योगिनी रुकी और अपने बड़े-बड़े नेत्रों से मुझे देखने लगी। उसका गम्भीर भाव मानव जीवन के रहस्य को भेदने की चेष्टा कर रहा था।

मैं काँप उठा! मेरे नेत्र उसके तेजपूर्ण मुख से हट कर उसके पैरों की तरफ़ देखने लगे। मैंने लड़खड़ाते हुए स्वर से फिर कहा—'सरला!'

योगिनी धीरे-धीरे मेरे पास आई और बोली—नरेन्द्र! मुझे भूल जाओ। मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। समाज में मेरा ठिकाना नहीं है। समाज ने मुझे ठुकरा दिया है। मैं समाज को ठुकराने की चेष्टा कर रही हूँ।

नरेन्द्र—तुम क्या कह रही हो सरला, मैं कुछ नहीं समझता।

सरला—यही कि तुम मुझे भूल जाओ और अब मुझे जाने की आज्ञा दो।

नरेन्द्र—सरले, यह नहीं हो सकता। मैंने तुम्हें एक बार खोकर फिर पाया है। अब तुम्हें नहीं जाने दूँगा! यहाँ तुम कहाँ ठहरी हो?

सरला—नरेन्द्र, तुम मेरे ठहरने का ठिकाना क्या पूछते हो? संसार में मेरे लिये कोई स्थान नहीं है। जंगलों और देशों में मारी-मारी फिरनेवाली योगिनी का ठिकाना क्या!

नरेन्द्र—यह नहीं हो सकता। सरला, मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा।

सरला मेरे साथ चलने के लिये राज़ी नहीं हुई। मेरे बार-बार कहने से उसने मुझे वचन दिया कि कल प्रातःकाल मुझसे अवश्य मिलेगी। मैं कर ही क्या सकता था। वह मेरे देखते-देखते ओझल हो गई! शालामार का रमणीक स्थान मुझे काटने लगा। वहाँ से उठ कर मैं धीरे-धीरे अपने शिकारे पर आया। हांजी शिकारे को हाउस बोट की तरफ़ ले चले। जिस तरह से हांजियों के चप्पे डल के शान्त जल को चीर रहे थे, उसी तरह मानसिक वेदना मेरे हृदय को दुःखी कर रही थी। धीरे-धीरे शिकारा चश्मा शाही के पास मेरे हाउस बोट से आ लगा। मैं तुरन्त ही पलँग पर लेट गया और विचार के अथाह जल में गोते लगाने लगा।

(२)

मेरे पिता का स्वर्गवास हुए तीन वर्ष हो चुके थे। वे मोहरा के बिजलीघर के बड़े अफ़सर थे। हमारा ख़ानदान कश्मीर के

बड़े घरानों में गिना जाता था और सब पिता जी का आदर करते थे। मैं श्रीनगर के श्रीप्रताप कालेज में पढ़ा करता था। मैं बीस बरस की आयु में बी० ए० की परीक्षा में बैठा। परीक्षा ख़तम होने के थोड़े ही दिनों के बाद मैं मोहरा आ गया। यूं तो मैं बहुत देर में सोकर उठा करता था, लेकिन एक दिन चार बजे ही आँख खुल गई। उस समय अन्धकार था। संसार रात्रि की शान्तिदायक गोद में सो रहा था। ठंडी हवा के मन्द-मन्द झोंकों के लगने से मेरा हृदय खिलने लगा। आध घण्टा चलने के बाद मैं लौटा। अपने गाँव के पास आते-आते सबेरा होने लगा। यकायक मेरी नज़र पास के चश्मे पर पड़ी, मैं रुक गया। एक स्त्री पानी भर रही थी! उसे साड़ी पहने हुये देखकर मैं चकराया। माहोरा में साड़ी कैसी! मैं यह विचार ही कर रहा था कि स्त्री ने मेरी तरफ़ देखा! वह बीस-एक्कीस बरस की युवती होगी। उसके पवित्र सौन्दर्य को देखते ही मेरी आँखें नीची हो गईं!

थोड़ी देर तक मैं ऐसी अवस्था में रहा। फिर हिम्मत करके आगे बढ़ा। वह युवती उसी तरह खड़ी हुई थी! मुझे आगे आते देखकर उठी और चलने लगी। न मालूम क्या विचार करके मैंने हिन्दुस्तानी ही में पूछा, 'आप कौन हैं? क्या आप कश्मीरी नहीं हैं?' यह सुनते ही उसका भाव बदलने लगा। मुझे नज़र आने लगा कि वह जल्दी ही जाने की कोशिश कर रही है। 'मैं किशन कौल की पुत्री हूँ,' यह कह कर वह चल दी। मैं ठिठक गया। वह कश्मीरी है। परन्तु इसके अटेहरू नहीं थे। इतनी बड़ी स्त्री बग़ैर ब्याह के नहीं रह सकती। तो क्या वह विधवा है? इस विचार के आते ही मैं डर गया। भारतीय नारियों पर समाज का यह घोर अत्याचार—संसार में कहीं ऐसा नहीं होता! हमारी आँखें कब खुलेंगी? इन्हीं विचारों में डूबा हुआ मैं घर लौट आया।

(३)

किशन कौल बिजलीघर में काम करते थे। उनकी तनख़ाह बीस रुपया माहवार थी। मुझे उसके बारे में और कुछ जानने की टोह हुई! मालूम हुआ कि लाहोर से उन्हें आये हुए पाँच बरस हुये। जिस समय वे अपनी युवा कन्या के साथ मोहरा पहुँचे, उस समय उनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं थी। मेरे पिता जी को उनके हाल पर दया आई और उनको बिजलीघर में पन्द्रह रुपये माहवार की जगह दे दी! इन ६ बरसों में यही हुआ कि उनकी तनख़ाह १५ रुपये से २० रुपये हो गई। परन्तु इससे होता ही क्या है! सच तो यह है कि वे अब तक सौ भी न बचा पाये होंगे। मैं उनके यहाँ आने जाने लगा। किशन जी मेरा बड़ा आदर करते थे। उनके बर्ताव से मुझे यह ज़ाहिर होने लगा कि मैं ज़रूर ही इस इज्ज़त के क़ाबिल हूँ। कभी-कभी मैं बातें करने से अपना बड़ापन ज़ाहिर करता, लेकिन किशन जी का हँसमुख चेहरा मेरी इन बातों से कभी उदास न होता। मैंने देखा कि जब मैं किशन जी के मकान में बैठता, तो सरला बहुत कम सामने आती! कभी-कभी जब किशन जी चाय मँगवाते, तो खामू से चाय देकर जल्द ही चली जाती!

एक दिन मैंने बातों-बातों में पूछा—किशन जी, आपने अपनी कन्या का अभी तक विवाह क्यों नहीं किया?

किशन जी का हँसमुख चेहरा उदास हो गया। उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। मैंने फिर पूछा। बूढ़े किशन जी बच्चों की तरह रोने लगे। मैं इस रहस्य को न समझ सका। किशन जी गम्भीर स्वर में धीरे-धीरे कहने लगे—'नरेन्द्रनाथ जी, मैं बड़ा बदक़िस्मत हूँ। मैंने पिछले जन्म में न मालूम कौन-कौन से पाप किये, जो अब इतना दुःख झेल रहा हूँ। माता-पिता मुझे बालक

ही छोड़कर चल बसे। बूढ़े चचा ने ब्याह किया। थोड़े ही दिनों में मैं सुख से रहने लगा। सरला ने मेरे घर को स्वर्ग बना दिया। मेरी पत्नी तो देवी ही थी। मैंने अपने जीवन में जितने सुखों का अनुभव किया, उसका कारण वही देवी थी। मेरी सरला बड़ी होने लगी। हम सब सन्तुष्ट थे, लेकिन नरेन्द्रनाथ जी, मेरे सुख का सूर्य अस्त होने लगा। मेरी पत्नी बीमार हो गई। वह साल भर तक संसार में नरक का अनुभव करती रही। मेरा सब कुछ उसकी बीमारी में स्वाहा हो गया। सरला को सोलह बरस की छोड़कर वह संसार से चल बसी। मुझ पर क्या बीती, इसका वर्णन नहीं कर सकता। मुझे कन्या के विवाह का ख़याल आया, लेकिन समाज ने भी मुझ पर कुछ तरस न खाया। मेरे पास खाने को तो था ही नहीं। वर को कन्या के सिवाय और क्या देता। पाँच तान और सात तान का सुन कर तो मैं काँप जाता था। बहुतों से बिनती की, मगर मुझ गरीब की सुनता कौन था। बूढ़े अवश्य राज़ी हो जाते थे, लेकिन मैं कन्या को दुःख के समुद्र में नहीं डालना चाहता था। थोड़े दिनों बाद मुझे कश्मीर से चलने की सूझी। मोहरा पहुँचा, तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी। तुम्हारे पिता ने मुझ पर कृपा की, परन्तु समाज ने अभी तक अत्याचार जारी रखा। योग्य वर कहाँ से लाऊँ? वर तो बिकाऊ वस्तु है। अच्छी वस्तु के ज्यादा दाम, लेकिन यहाँ थैली खाली है। क्या करूँ? यह अब कितनी बड़ी हो गई है कि अब जिसके सामने मैं कुछ कहता हूँ, वह मुझे नफ़रत की नज़र से देखने लगता है।'

किशन जी के साथ मैं भी रोने लगा। मेरा सारा बड़ापन नेत्रों से आँसू बन कर बह गया। मैंने किशन जी के पैर पकड़ लिये और आजिज़ी से कहा—मुझे अपना पुत्र बनाइये।

किशन जी चौंक पड़े और कहने लगे—नरेन्द्रनाथ, लड़कपन मत करो। देखो, समाज क्या कहता है ?

मैंने मुस्तक़िल मिज़ाजी से कहा कि 'मैं करुणासिन्धु भगवान् की शपथ खाकर कहता हूँ कि सरला से ही विवाह करूँगा। मुझे समाज की परवा नहीं।'

किशन जी चुप हो रहे! मैं उठा। जाते समय देखा कि सरला दरवाज़े के पीछे खड़ी रो रही है। मुझे देखते ही जल्दी-जल्दी दृष्टि से ओझल हो गई। मैं घबरा गया।

(४)

'नरेन्द्र, क्या तू पागल हो गया है ?'

पिता जी के इन कठोर शब्दों से मैं भयभीत हो गया। मैं चुप रहा! उन्होंने फिर कहना शुरू किया—'आज से तुम्हारा किशन कौल के यहाँ आना जाना बन्द। क्यों अपने बाप-दादा के माथे पर कलंक का टीका लगा रहा है ? देख तो, लोग क्या कह रहे हैं। किशन कौल की लड़की के साथ तू क्यों अपना और मेरा मुँह काला कर रहा है ?'

कुछ देर के बाद मैंने नर्मी से जवाब दिया—'भाई जी, मैंने तो क़सम खाई है कि इनकी कन्या ही के साथ विवाह करूँगा। वरना मैं ज़िन्दगी भर ब्याह ही नहीं करूँगा !'

पिता जी और गरम हो उठे—'यह क्या ! क्या अपने घर में उस मामूली आदमी की कन्या लाऊँगा, जिसका कोई आगा-पीछा नहीं है। क्या भले घर की लड़कियाँ ख़तम हो गई हैं, जो मेरे घर वह बड़माजी आएगी।'

यह कहकर वे चले गये। मैं हैरान रह गया। सरला मुझसे दो साल बड़ी थी, मगर उसको बड़माजी कहना घोर अन्याय था। दर असल लोगों की ज़बान पर हमारी ही बातें थीं।

दुनिया का मुँह कौन बन्द कर सकता है ? तरह-तरह की झूठी बातें लोग उड़ा रहे थे। किशन जी सब कुछ कर सकते थे, परन्तु अपनी कन्या की बुराई न सुन सके। उनकी मानसिक वेदना ने उन्हें अपना ग्रास बना ही लिया और वे इस संसार से चल बसे। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई, उसी दिन रात्रि के समय मैं बाहर के कमरे में अकेला बैठा हुआ समाज के अत्याचार पर विचार कर रहा था। यकायक द्वार खुला और एक स्त्री मेरे सामने आ खड़ी हुई। वह सरला थी। मैंने आश्चर्य से कहा—क्या है सरला ?

सरला सजल नेत्रों से मेरी तरफ़ देखने लगी। फिर मायूसी से बोली—'मुझ दुखिया पर संसार ने बहुत से अत्याचार किये हैं। मैं तो दुखिया थी। अब आपको क्यों दुःख दूँ। आप मुझे भूल जाइये ! आपको सुखी देखकर मेरी आत्मा सुखी होगी। नाथ, मेरे अपराधों को क्षमा करो। यह अन्तिम मिलन है।' इतना कहकर सरला मेरे चरण छूकर बाहर निकल गई। मुझे कुछ कहने का मौक़ा ही न मिला।

मैं उसका पीछा करने के लिये उठा और बाहर दौड़ा, परन्तु विधाता को उससे मिलाना मंजूर नहीं था। बाहर अन्धकार में इधर-उधर देखने लगा, मगर सरला न दिखाई दी ! ऐसा ज़ाहिर हुआ, गोया रात्रि ने उसे हर लिया हो। मायूस होकर मैं लौट आया। मेरी सरला अलोप हो गई। विधाता ने उसे मुझसे छीन लिया ! मेरा सब कुछ हर लिया।

(५)

नरेन्द्र—सरला, तुम उस दिन अन्धकार में कहाँ लोप हो गई थीं ?

योगिनी हँसने लगी। मैंने फिर पूछा। सरला कहने लगी—

'आपके चरण छूकर मैं मारी-मारी फिरती रही। मेरे हृदय में यह समा गया कि संसार रहने का स्थान नहीं है। परन्तु आत्महत्या आसान काम नहीं है। झेलम में कूद कर प्राण देने को सोचती थी, परन्तु प्राणों की ममता हृदय में दुर्बलता उत्पन्न कर देती थी। इसी सोच में सबेरा हो चला।

मैं नदी के किनारे खड़ी ही थी कि एक तपस्वी पुरुष सामने आ खड़े हुये। वे थोड़ी ही देर में समझ गये कि मैं किसी सोच में हूँ। वे मुझे चुप देखकर बोले—'पुत्री, आत्महत्या घोर पाप है। शरीर का पालन करना भी धर्म है। संसार को त्यागना है, तो इसी में रह कर इसे त्याग।'

मैं चुप रही। पास ही इनकी कुटी थी। मैं वहाँ गई। उनसे अपनी जीवनी कह सुनाई। कुछ दिनों तक मैंने उनकी सेवा की। उनके कहने से योगिनी के भेष में जगह-जगह फिरने लगी! कल अकस्मात आपसे फिर भेंट हो गई।'

इतना कहकर सरला चुप हो गई। मैं भी सोचने लगा—'दरअस्ल घर से निकली हुई ब्राह्मण कन्या का समाज में क्या ठिकाना है। सरला आत्महत्या के लिये घर से निकली थी। वह पाप था, परन्तु लौटकर समाज के सम्मुख आना भी असम्भव था। उसके लिये तो कोई मार्ग ही न था। योगिनी बनने के सिवा वह और कर ही क्या सकती थी!'

मेरी खोई हुई सरला फिर मेरे सामने बैठी हुई थी, जिसके लिये मैंने अपना सब कुछ त्याग दिया था। इस खोई हुई वस्तु को मैं अपने सामने देख रहा था। मैं जानता था कि अब सरला ही मेरे जीवन को सुखमय बना सकती है। मुझे किसी का डर न था। रोक-टोक करता कौन? घर में सब कुछ मैं ही मैं था। रह गया समाज, सो उसको मैं देख चुका था। उसके हाथों बहुत कुछ दुःख झेल चुका हूँ। अब मुझे उसकी रत्ती भर भी परवाह

न थी। मैं बिल्कुल निडर हो गया था। अब रही-सही बात सरला पर थी। मैंने बहुत कुछ विचार करके उससे कहा—तुम्हारी इस दशा का कारण मैं ही हूँ। क्यों न मैंने तुम्हें पहिले ही अपना बना लिया। उस समय मेरी बुद्धि कहाँ लोप हो गई थी! सरला, मुझे तुम क्षमा करो।

सरला कुछ न बोली। मुख नीचा किये हुए मेरी बातें सुनती रही। मैं अधीर होकर फिर बोला—'मैंने तुम्हें खोकर पाया है। अब खोना मूर्खता होगी। सरला, बहुत हो चुका। अब मेरी हो जाओ।

उसके कपोलों पर ख़ून दौड़ने लगा। अब भी उसने मेरी बात का कुछ उत्तर न दिया। मैंने फिर पूछा—सरला, मेरी बातों का उत्तर क्यों नहीं देती?

'मैं आपकी ही हूँ।'

(६)

मेरा और सरला का विवाह हो गया। मैं तो यही ख्याल करता था कि समाज कुछ न कुछ रुकावट ज़रूर डालेगा, परन्तु मुझे मालूम हो गया कि समाज छोटों ही पर हमला करता है। हमारे विवाह के बारे में पीठ पीछे जो कुछ लोगों ने कहा हो, लेकिन दावतों में तो सब शरीक हुये और सामने किसी ने चूँ तक नहीं की।



मुरझाई हुई कली

(१)

'तुमने कुछ सुना ? हिस्टरी के जो नये प्रोफ़ेसर आये हैं, वे कश्मीरी हैं। तुम तो इन्हें जानते होगे ?'

मैं बोर्डिंग में अपने कमरे में बैठा हुआ कुछ पढ़ रहा था। इतने में गोपाल ने आकर यह सवाल किया। मैं भी कुछ चकराया ! कौन से कश्मीरी प्रोफ़ेसर आ गये ?

'कब आ रहे हैं ?'

'आज दस बजे ही तो उनका पहला लेकचर होगा !'

इतना कहकर वह हज़रत तो खिसक गये ! कालेज जाने का वक़्त हो गया था। उठकर चलने की तैयारी की। मुकर्रर वक़्त पर वहाँ पहुँच गया। लड़कों ने मुझे देखते ही आ घेरा और नये प्रोफ़ेसर साहब के बारे में तरह तरह के सवाल करने लगे। मैंने आजिज़ आकर कहा—'भाई, मैं इनके बारे में कुछ नहीं जानता। खुद कश्मीरी ज़रूर हूँ, लेकिन इसके यह मानी नहीं हैं कि सारे कश्मीरियों को जानने का ठेका लिया है !'

घण्टी बजी। हम सब लोग दरजे में आकर बैठ गये। थोड़ी देर के बाद प्रोफ़ेसर साहब तशरीफ़ लाये। चौबीस-पचीस बरस के होंगे। लम्बा क़द, गोरा रँग, बड़ी-बड़ी आँखें ! ग़रज़ के हर तरह से एक ख़ूबसूरत नौजवान कहलाने के मुस्तहक़ थे। अक्सर प्रोफ़ेसर लड़को पर रौब गाँठने के लिये बड़े ठाठ से आते हैं। लेकिन हमारे नये प्रोफ़ेसर साहब खद्दरधारी थे ! उन्होंने एक घण्टे तक लेक्चर दिया। हम लोग सब बड़े ग़ौर से सुनते रहे।



लेखक (पण्डित शिवनाथ काटजू)
सन् १९३१ में

लेक्चर काफी दिलचस्प था। यूँ तो हर तालिब इल्म के दिल में अपने गुरु को श्रद्धा होती है, लेकिन न मालूम क्यों मैं उसी दिन से उनका भक्त हो गया।

शाम को उनसे मिलने उनके मकान पर पहुँचा। मुझे देख-कर वे बहुत ख़ुश हुए। बहुत देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। जब मैं चलने लगा, तो उन्होंने फ़र्माया कि 'अगर तुम्हें हिस्टरी में कोई बात पूछनी हुआ करे, तो बराबर पूछ जाया करो।'

(२)

मैं प्रोफ़ेसर साहब (इनका नाम लिखना बेकार है) के यहाँ अक्सर जाया करता था। पहले तो उनसे उस्ताद-शागिर्द ही जैसा तालुक़ था लेकिन थोड़े दिनों के बाद दोस्ती भी हो गई। स्कूलों में तालिब ईल्म और उस्तादों के दरमियान इस तरह का ताल्लुक नहीं होता लेकिन कालेज के लिये तो यह एक आम बात है। हिस्टरी के अलावा और मज़मूनों पर भी उनसे अक्सर बहस हो जाया करती थी। एक दो मरतबा मैंने उनसे यह भी दर्याफ़्त किया कि हमारी गुरुआनीजी कब तक आयेंगी, लेकिन वे इस बात को उड़ा गये। न मालूम क्या बात थी कि जब-जब मैंने इस बात का ज़िक्र छेड़ा, वे मेरी बात का जवाब न देकर किसी सोच में पड़ जाते थे। मैं इस राज़ को न समझ सका।

एक दिन न मालुम किस काम से मैं सुबह ही उनके यहाँ पहुँच गया। वे ड्रेसिंग रूम में थे। मैं बग़ैर इत्तिला कराये हुए अन्दर चला गया। क्या देखता हूँ कि प्रोफ़ेसर साहब बैठे हुए एक तस्वीर को बड़े गौर से देख रहे हैं। मैं दबे पाँव आगे बढ़ा और उस तस्वीर को देख ही लिया। जल्दी में इतना ही देखा कि किसी युवती की तस्वीर है। प्रोफ़ेसर साहब ने मुझे देखा और कुछ सिटपिटाये। तस्वीर को छुपाने की कोशिश करने लगे।

मैंने हँसते हुए कहा—"अब आप छुपाते क्या हैं ? मैं आज ही सबसे कह दूँगा। अब तो मिठाई खिलानी ही पड़ेगी। आप बच नहीं सकते।"

प्रोफ़ेसर साहब का रंग उड़ गया। समझा कि तीर निशाने पर लगा है। फिर क्या था, लगा बार-बार कहने—"अब तो मिठाई खिलानी ही पड़ेगी।"

प्रोफ़ेसर साहब थोड़ी देर तक चुप रहे। फिर संजीदगी के साथ बोले—'देखो, लड़कपन मत करना। तुम्हारा ख़याल बिल्कुल ग़लत है।'

'तो यह तस्वीर किसकी है ?'

'मेरा कहा मानो ! अब इस बात को अलग करो।'

मुझे भी कुछ ज़िद ही होगई कि बात मालूम ही करनी चाहिये। उनसे बहुत इसरार किया। आख़िर में वे मुझसे हार गये। फ़रमाया—'अब तो कालेज जाने का वक्त आ गया है। जब नाम ही बताना है तो सारा क़िस्सा कहना पड़ेगा। तुम आज शाम को आना। चाय भी यहीं पीना। मैं तुमसे सब कह दूँगा।'

मुझे कालेज जाना था। उनसे बिदा हुआ। मुझे बड़ा ताज़ुब हुआ कि इस बात को उन्होंने तूल क्यों दिया। ऐसी कौन सी बात है, जिसके कहने में उन्हें ज़्यादा वक्त लगेगा। यही सोचता हुआ मैं बोर्डिंग चला गया।

(३)

प्रोफ़ेसर साहब चाय पर मेरा इन्तिज़ार ही कर रहे थे कि मैं पहुँच गया। थोड़ी देर तक तो इधर-उधर की बातें होती रहीं। फिर मैंने काम की बात शुरू की। प्रोफ़ेसर साहब न मालूम किन ख़यालों में डूब गये। वे थोड़ी देर तक तो इस हालत में रहे। फिर एक ठंडी सांस भर कर कहना शुरू किया—

'पिछले साल का ज़िक्र है, मैं लाहोर के गवर्नमेंट कालेज में पढ़ा करता था। चूँकि मेरे माँ बाप अमृतसर में थे। इसलिये लाहोर में मुझे बोर्डिंग में रहना पड़ा। यों तो बहुत से लड़कों से मेरी दोस्ती थी, लेकिन प्रताप नारायण से मेरी बहुत बनती थी। वह मुझे बहुत मानता था और अक्सर पढ़ने में मेरी मदद भी किया करता था।

इमतिहान बहुत पास आ गया था। गर्मी भी शुरू हो गई थी। अक्सर मैं रात को देर तक पढ़ा करता था। एक रोज़ सुबह तड़के ही प्रताप ने मुझे जगाया। मैंने आँखें बन्द किये हुए पूछा—'क्या है?'

'मुझे अभी किशनलाल जी के यहाँ जाना है। चलते हो?'

'क्यों, वहाँ क्या है?'

'आप भी अजीब आदमी हैं। दीन-दुनिया से कुछ सरोकार नहीं रखते। यह भी पता नहीं है कि आजकल उनकी साहबज़ादी की शादी हो रही है। कब क्या था, इतना तो मैं खुद नहीं जानता, लेकिन फ़िलहाल पोषपूजा सुनने जा रहा हूँ।'

मैंने बहुत चाहा कि टाल जाऊँ। इधर देर से सोया था। अब तड़के ही उठ खड़ा होना बहुत दुश्वार गुज़रा। आख़िरकार उनके बहुत कहने-सुनने से राज़ी हो गया।

हम दोनों उनके यहाँ पहुँचे। मकान के अन्दर घुसते ही पहले एक खुला हुआ चबूतरा था और फिर आँगन। दोनों ही जगह शामियाने लगे हुये थे। आँगन में पूजा हो रही थी। वहीं सब लोग जमा थे। मैंने सोचा इधर कौन जाय, पहले शामियाने के नीचे ही बैठ गया।

नूर का तड़का ही था। भीनी-भीनी हवा के खुश-गवार झोंके हर चीज़ में लहर पैदा कर रहे थे। पोषपूजा शुरू हुई। सुबह के वक्त संगीत का कोमल अलाप कितना दिलकश था। आवाज़

के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ सारा वातावरण नाचता हुआ नज़र आ रहा था। सङ्गीत का आनन्द लेने की ग़रज़ से सूरज भगवान भी पूरब के लाल परदे को धीरे-धीरे हटा रहे थे। चारों तरफ़ शान्ति थी। गाने का अलाप इस शान्ति को चीर कर दिल से टकरा रहा था। मैं अपनी आँखें बन्द किये हुये न मालूम क्या सोच रहा था। इतने में मुझे यह आशीर्वाद सुनाई पड़ा—

अतिरमणीयाकृतयोः
समवयसोः प्रोल्लसत्प्रेमतो।
रघुवरयोर्नूनं भवतो
पाणिग्रहणं शिवोऽस्तु ॥❀

मेरे कान खड़े हो गये। प्रताप से पूछा—'नौशा की क्या उम्र है ?'

'यही छत्तीस-अड़तीस बरस की। शायद ज़्यादा हो। मुझे ठीक याद नहीं।'

'और लड़की तो बहुत छोटी है !'

'हाँ, अब सोलह की पूरी होगी !'

मैं सोच में पड़ गया। क्या बराबरी है, बिना समझे ही श्लोक पढ़े चले जा रहे हैं ! अगर मानी की तरफ़ ख़याल होता, तो इस श्लोक को पूजा से ज़रूर खारिज कर देते। मैं यह सोच ही रहा था कि पास ही तख़त पर बैठी हुई एक लड़की पर मेरी नज़र पड़ी। वह गर्दन झुकाये हुए बैठी थी। चेहरा उदास था। यह कौन है ? ख़ुशी के वख़त यह उदासी क्यों ? मैंने प्रताप से पूछा—'यह कौन है ?'

❀ हे वर, वधू ! तुम दोनों जो इतने सुन्दर हो, तुम दोनों जो आयु में बराबर हो, आपस के प्रेम में उल्लसित हो। हमारा आशीर्वाद है कि तुम्हारा विवाह सदा सुखदायी हो।

'तुमको नहीं मालूम। मेरी मा और बहन इस शादी में शरीक होने के लिये अमृतसर से आई हुई हैं। यह मेरी छोटी बहन है।'

चुप मैं रहा! थोड़ी देर के बाद वह फिर कहने लगा—'बेचारी बड़ी बदक़िस्मत है। छुटपने ही में शादी हो गई और शादी के चार साल बाद ही विधवा हो गई।'

दुनिया की लीला भी अजीब है। किसी को बात की बात में सुखी और दुःखी बना देना तो परमात्मा के बाएँ हाथ का खेल है। कली खिल कर फूल बनती है। कुछ दिनों तक बाग़ की रौनक बढ़ाती है। फिर मुर्झा जाती है। यह तो सबके साथ ही लगा हुआ है। बाज़ कलियाँ ऐसी होती हैं, जो खिलते ही मुर्झा जाती हैं। ऐसे फूल की अधखिली पंखड़ियाँ बाग में पड़ी रोया करती हैं, लेकिन परमात्मा का कोप कभी इससे भी अधिक बढ़ जाता है। कली खिलने ही नहीं पाई कि पहले ही मुर्झा गई। इसको धरतीमाता की आराम देनेवाली गोद में भी जगह न मिली। वह टहनी पर लगी रहकर ही दूसरों की बहार को अपनी फूटी आँखों से देखती है। क़ुदरत उसकी मुसीबत में उसकी हमदर्द नहीं बनती। सच तो यह है कि प्रकृति उसे मुसीबतज़दा देखकर हँसती है। उसके धधकते हुए कलेजे में घी का छींटा देती है। यह ज़ुल्म है। यह परमात्मा का खेल इनसान की जिन्दगी का राज़ है। इसको कौन जान सकता है?'

मैं ज्यादा देर वहाँ नहीं ठहर सका। उस मुर्झाई हुई कली को देखकर मेरा दिल भी मुर्झाने लगा।

(४)

छुट्टियों में अमृतसर पहुँचा। इम्तेहान खत्म हो गया था। यह इरादा किया था कि नतीजा निकलने तक वहीं रहूँगा। फिर

आगे देखा जाएगा। प्रताप भी अपने घर आ गया। यूं तो मैं उसके घर नहीं जाया करता था, लेकिन इस बार वहाँ आना जाना शुरू कर दिया।

मैं कमला को देखता था, कमला मुझे देखती थी। हालांकि उसकी शादी हो चुकी थी, लेकिन इसके कहने की ज़रूरत नहीं है कि वह बराय नाम की थी। वह बेचारी तो फेरों की गुनहगार थी। इसके पेशतर कि दुनिया की बातें उसे मालूम हों, उसकी चूड़ियाँ तोड़ी जा चुकी थीं। मुझे ऐसा लगा कि उसके दिल में वह भाव जिससे शायद ही कोई इन्सान महरूम किया जाता है उभरने लगा है। किसी ने एक दूसरे से कुछ नहीं कहा। मैं सोचने लगा क्या करूँ, क्या न करूँ! कभी सोचता था, अपने मां बाप से कहूँ। कभी प्रताप और उसकी मां से सब बातें कह डालने को जी चाहता था।

इसी सोच में कई दिन गुज़र गये। पहले तो प्रताप के यहाँ आया जाया करता था। लेकिन कुछ दिनों के बाद आमदरफ्त कम हो गई। मैंने तनहाई का दामन पकड़ लिया। हरचन्द कोशिश की कि उसका ख्याल दिल से निकाल दूँ, लेकिन यह नामुमकिन था। जब रहा न गया, तो एक दिन प्रताप से सब साफ़-साफ़ कह दिया। वह यह क़िस्सा सुन कर घबराया। मैंने कहा—यह जल्दी का काम नहीं है। पहले खूब ग़ौर कर लो। फिर जो तुम्हारे समझ में आए वह मुझसे कह देना।

थोड़े दिनों के बाद प्रताप से मिला। जब मैंने इस बात को छेड़ा, तो वह कहने लगा—'मैं खुद जानता हूँ कि कमला के साथ ज़ुल्म हो रहा है। उसकी शादी तो सिर्फ़ नाम का बन्धन था। उसका खाविन्द जब मरा, तो वह जानती ही नहीं थी कि मुझ पर कौन सा पहाड़ टूटा! खिलौने से खेलनेवाली मासूम लड़की उस बिपता को क्या जाने। ऐसी हालत में मैं पुनर्विवाह

हरगिज़ ख़िलाफ़ नहीं हूँ ! मेरी माँ भी कहने सुनने से मान जायँगी। कौन नहीं चाहता कि अपनी दुखी बच्ची को मुसीबत से निजात दे, लेकिन इस बात में क्या और लोग झगड़ा नहीं खड़ा करेंगे ? और तो और, क्या आपके वालदैन को मंजूर होगा कि एक विधवा को घर में लाएँ ? आप क्या कहते हैं ?'

मैं यह सुन कर सोच में पड़ गया। मुझे औरों के कहने-सुनने की तो ज़रा सी भी फ़िक्र नहीं, लेकिन माँ बाप की राय के ख़िलाफ़ जाना मेरे लिये दुशवार था। प्रताप से यह कह कर बिदा हुआ कि 'वालिद से कहूँगा ! देखें, वे क्या कहते हैं। अब तो परमात्मा ही हमारा बेड़ा पार लगायेगा !'

वालिद से कहना बड़ी हिम्मत का काम था। मैंने सोचा, पहले वालदा को टटोलो। एक दिन खाना खाते वक्त उनको यह किस्सा सुनाया। यह सुनकर वे बिचारी बोखला गईं— 'नन्ना, तुझे क्या हो गया है ! ऐसी बात को दिल में जगह भी नहीं देनी चाहिये। उसमें कौन से सुरख़ाब के पर हैं। मैं ऐसी चाँद सी बहू लाऊँगी कि घर चमक जाएगा !'

अब तो वालिद से कहना ही पड़ा। मैं जानता था कि अगर उन्होंने ना कर दिया तो मेरे सामने एक बड़ा ज़बरदस्त मसला खड़ा हो जाएगा। वालिद बुज़ुरगवार उन लोगों में से थे, जो समाज की नई हलचल से कोसों दूर भागते थे। उठते-बैठते नई रौशनीवालों को हज़ारों गालियाँ सुनाना उनके लिये एक मामूली बात थी। इतना जानते हुये भी उनसे बिना कहे काम नहीं चलता था। परमात्मा पर भरोसा करके दूसरे दिन उनके सामने जा खड़ा हुआ ! मुझे देखते ही वे गम्भीर हो गये— 'क्या कहना है ?'

मुझसे कुछ नहीं कहा गया। इसी तरह चुपचाप खड़ा रहा।

'तुम्हारी नई सनक मुझसे बयान कर दी है। क्या इसी बारे में कुछ कहना है ?'

मैंने दबी ज़बान से कहा—'जी हाँ।'

यह सुनते ही उनका पारा चढ़ गया। मैं उनका प्रचंड रूप देखकर घबरा गया।

'तुम्हारी माँ ने तुम्हें धीरे से कह दिया। तुम पढ़े-लिखे हो, थोड़े ही में तुम्हें समझ जाना चाहिये। मुझे तुमसे कभी ऐसी उम्मीद नहीं थी कि बुढ़ापे में मुझे ऐसा सदमा पहुँचाओगे। तुम्हें इख़तियार है, जो जी चाहे करो, लेकिन मैं अपनी ज़बान से कभी 'हाँ' नहीं निकालूँगा। इतना याद रखना कि तुमने यह नाशाइस्ता हरकत की, तो मुझे तुमसे कोई वास्ता नहीं रहेगा। मुझे बुढ़ापे में अपना काला मुँह मत दिखाना।'

इतना सुनना था कि काटो तो बदन में लहू नहीं ! पैर के नीचे से ज़मीन खिसक गई। जिस बात का डर था, वही हुई। इस दुशवार मसले का इस तरह ख़ातमा हो गया। वालिद के हुकुम के वरखिलाफ़ जाने की हिम्मत नहीं थी। शायद और मुलकों में वालदैन की राय के ख़िलाफ़ जाना एक मामूली बात हो, लेकिन हिन्दुस्तान में लड़कों के लिये वालदैन का हुकम सब कुछ है। मेरी समझ में कुछ नहीं आता था कि क्या करूँ, क्या न करूँ ! एक तरफ़ वालदैन थे, दूसरी तरफ़ कमला। मैं अँधेरे में आ पड़ा, कुछ नहीं सूझता था।

(५)

दिन गुज़रने लगे। मैं घर से बाहर ही नहीं निकला। प्रताप से क्या कहता। कमला मेरे दिल की बात तो जानती ही थी। अब किस तरह उसे उम्मीद के बाग़ से निकाल कर, ना उम्मीद की धधकती हुई आग में झोंक देता ! हर वक़्त ख़यालात की

दुनिया ही में पड़ा रहता। तरह-तरह के ख़यालात दिल में आते रहते थे। ऐसी हालत में अपने आइन्दा की बाबत मुस्तक़िल राए कायम नहीं कर सका। मुझे उदास देखकर वालदा कभी-कभी आकर समझातीं। मेरा सर अपनी गोद में रख लेतीं। वाक़ई मां की गोद में शान्ति का निवास है। मां के प्रेम में एक बड़ी ज़बरदस्त ताक़त छुपी है। मैं अकसर इस प्रेम के मधुर स्रोत में बह जाता। लेकिन यह आनन्द थोड़ी ही देर का होता। जिस तरह से कोई ग़फ़लत की नींद से चौंकता है, उसी तरह आइन्दा का खयाल मुझे इस दुनिया से निकाल कर दूसरी जगह फेंक देता था। मेरे सब्र का प्याला धीरे-धीरे भर रहा था, लेकिन उम्मीद भी क्या चीज़ है! इसकी एक किरन भी इनसान में जान डाल सकती है। मैं इस उम्मीद के भरोसे पर बैठा था।

एक दिन सुबह के वक्त नौकर ने एक ख़त दिया। मालूम हुआ प्रताप जी के यहाँ से लाया है। मैंने डरते-डरते लिफ़ाफ़ा चाक़ किया। उसे पढ़ते ही मैं काँप उठा! कमला ने ख़त में यह लिखा था—..'मुझे आपको किसी नाम से पुकारने का अधिकार नहीं है। मैं यह ख़त भी मजबूरन लिख रही हूँ। मैं संसार में अपने साथ पिछले जन्म के पाप बटोर कर लाई हूँ। मेरे साथ-साथ आप भी परेशानी उठा रहे हैं। मेरा दुनिया से उठ जाना ही अच्छा है। मेरा आखिरी निवेदन यही है कि आप मुझे भूल जाएँ।

'कमला'

कमला कहीं कोई बेवकूफ़ी न कर बैठे। कहीं मायूसी की हालत में वह वाक़ई ख़ुदकुशी न कर ले! मैं इसी पर ग़ौर कर रहा था कि इत्तला मिली कि कमला ने अपने कपड़ों में तेल डालकर आग लगा ली। उसकी हालत बहुत ख़राब है। मैं बिना कुछ समझे बूझे ही उसके यहाँ दौड़ा गया। कमला बेहोश पड़ी हुई

थी। उसकी हालत नाज़ुक थी। डाक्टर साहब ने तो देखते ही जवाब दे दिया। मैं आँखें फाड़-फाड़ कर उसे देखने लगा। उस वक्त मुझ पर जो बीत रही थी, वह मैं ही जानता हूँ। थोड़ी देर के बाद कमला ने आँखें खोलीं और चन्द लमहों तक मुझे हसरत भरी निगाहों से देखती रही। फिर धीरे-धीरे उसकी आँखें बन्द हो गईं। मेरी कमला मुझे छोड़कर चल बसी!

इसके बाद जो हुआ, उसे मुख़्तसर करता हूँ। अमृतसर मुझे काटने लगा। मैं कहीं जाने को सोच ही रहा था कि तुम्हारे कालेज में प्रोफ़ेसरी मिल गई। अब वालदैन शादी के लिये बार-बार कह रहे हैं, लेकिन यह मुझसे नहीं हो सकता। अपने साथ-साथ दूसरे को क्यों घसीटूँ। यह तस्वीर कमला ही की है, जो मुझे किसी तरह से मिल गई थी।'

प्रोफ़ेसर साहब इतना कहकर ख़ामोश हो गये। मैंने गर्दन उठाई। उनका चेहरा सफ़ेद पड़ गया था। वे कुछ सोच रहे थे। ग़ालिबन पिछले वाक़ेआत के सीन उनके दिमाग़ के सामने आ गये थे। मैं चुपचाप उनकी तरफ़ देख रहा था। थोड़ी देर के बाद उन्होंने मेरी तरफ़ देखा और बोले—हमारे समाज ने बहुत सी रस्में ऐसी इख़्तियार कर ली हैं, जो मज़हब के उसूलों के बिलकुल ख़िलाफ़ हैं। अगर ग़ौर से देखा जाए तो यह मालूम होगा कि समाज इन्हें ख़ुद बुरी नज़र से देखता है, लेकिन उसमें इतनी ताक़त नहीं है कि वह इनसे अपना पिंड छुड़ा सके। लोग जानते हैं कि ये रस्में बुरी हैं, लेकिन इतना देखने पर भी वे इन्हें छोड़ने के लिये तैयार नहीं हैं।

मुझे कुछ ख़याल आया, मैंने कहा—आपने जिस लड़की का ज़िक्र किया है, यह वही तो नहीं है, जिसके जल कर मरने की ख़बर अभी हाल ही में सब जगह फैल गई थी।'

प्रोफ़ेसर साहब ने आहिस्ता से फ़रमाया—'हाँ!'

'लेकिन इसका नाम कमला तो था नहीं !'

प्रोफ़ेसर साहब सिटपिटा गये !

'अब जब इतना कहा है, तो वह भी कह डालिये।'

'मैं इस लड़की और उसके भाई का नाम छुपाना चाहता था, लेकिन तुम तो ताड़ ही गये हो।'

न इसका नाम कमला था, न इसके भाई का नाम प्रताप।

प्रोफ़ेसर साहब ने उनके नाम भी बता दिये ! लेकिन जब वे ख़ुद कहने में झिझकते थे तो मैं क्यों ज़ाहिर करूँ।



शादी और उसके बाद

(१)

शाम को फुटबाल का मैच खेल कर मैं अपने प्रोफेसर साहब के यहाँ पहुँचा ! मुझे देखते ही उन्होंने मुस्कराते हुये कहा—आइये-आइये, मुझे आज मालूम हुआ। आप बड़े खौफ़नाक आदमी हैं !

'ख़ैरियत तो है !'

'आप क़िस्सा नवीस कब से बन गये ! अगर कुछ लिखना ही था तो भाई मुझे क्यों घसीटा, क्या आपको और कोई नहीं मिला, जो मुझ पर ही हाथ साफ़ किये।'

'इन बातों में क्या धरा है। किसी को यह मालूम थोड़ी ही है कि वह आपका ही तज़करा है।'

ग़रज़ के मैंने इस बात को किसी तरह टाला। थोड़ी देर तक दो चार किताबों के मुताबिक़ गुफ़्तगू होती रही। फिर मैंने कहा—'आज तो दावत है ! क्या आप नहीं जा रहे हैं ?'

'हाँ, कार्ड तो मेरे नाम भी आया है। लेकिन मैं सोच रहा हूँ, वहाँ जाना बेकार है।'

'नहीं, आपको चलना पड़ेगा।'

मेरे कहने पर प्रोफ़ेसर साहब चलने के लिये तैयार हो गये। आठ बजने ही वाले थे कि हम वहाँ पहुँच गये। मिस्टर प्राननाथ बी० ए० (आकसन) की शादी पंडित शङ्करनाथ जी के दुख़्तर नेक अख़्तर मिस शान्ता एम० ए० से होनेवाली थी। साहबज़ादे एक बड़े घराने के तनहा चिराग़ थे। साहबज़ादी इस सूबे के

वज़ीर की लड़की। इस शादी से बहुतों की उम्मीदें वाबस्ता थी। साहबज़ादे को यह तस्कीन थी कि लड़की और कुछ नहीं तो लाख डेढ़ लाख तो साथ लाएगी। बिरादरी के लोग इसमें खुश थे कि तीन चार दिन दावतों में शिरकत तो नसीब होगी।

बरात आने में अभी थोड़ी देर थी। हम लोग अन्दर दाखिल हुए। मर्दों के लिये कुर्सियाँ बिछी हुई थी। औरतों के लिये तखतपोश। शोर का तो ज़िक्र ही क्या, आखिर वह शादी खाना ही था। शङ्करनाथ जी की स्त्री बड़ी मुस्तैदी से इधर-उधर नाच रही थीं। बेचारी रह-रह कर अपने नौकरों पर गुस्सा उतारती थीं। पास ही क़िबला शंकरनाथ जी एक आरामकुर्सी पर दराज़ थे। इनके इर्द-गिर्द बहुत से बुज़ुरगान क़ौम निहायत इतमीनान से उनकी बातों में हाँ में हाँ मिला रहे थे। कोई सियासी मज़मून ज़ेरे बहस था। वह रह-रह कर स्वराजियों को गालियाँ दे रहे थे।

मुझे सियासी झगड़ों से कोई दिलचस्पी नहीं है। मेरे एक दोस्त तखत के करीब ही एक कुर्सी पर बैठे हुये थे। मैं वहाँ जा बैठा। चन्द बड़माजियाँ आपस में बातें कर रही थीं। मेरे कानों में कुछ-कुछ भनक आने लगी।

'है है बेहनी, आजकल तो वह वह बातें सुनने में आती हैं कि मैं तो त्राह-त्राह करने लगती हूँ। यह निगोड़मारियाँ पढ़-पढ़ के घरों में आग लगाने आती हैं। बिश्शो बीबी को लो। किस अरमान से बहू घर में लाईं, लेकिन उसने आते ही अपना सिक्का जमाना शुरू कर दिया। लड़का तो जैसे इसके हाथ का खिलौना हो गया। मा को पूछता कौन। बिचारी तंग आकर अपने बड़े लड़के के यहाँ चली गईं।

'चम्पा बहनी, तुम इन लड़कियों को ही कहती हो। आजकल के लड़के क्या कम हैं। माँ बाप को तो छप्पर पर बिठाते

हैं। अब तो पसन्द का नया क़िस्सा निकला है। जैसे हम कुछ हैं ही नहीं। बेहनी, मेरी लक्ष्मी ठिकाने लग जाए, मुझे बस इन फैशनवालों से कोई मतलब नहीं। मैं तो दिन रात यही कहती हूँ कि यह सब मुझसे नहीं देखा जाता। मेरी आखें बन्द क्यों नहीं हो जातीं।'

थोड़ी देर बाद फिर आवाज़ आने लगी।

'.........चम्पो बहनी! लड़की को क्या दिया है? तुमने देखा?'

'हाँ, दिन को शंकर रानी मुझे दिखा रही थीं।'

'मैं भी सुनूं।'

'कानों में बिजलियाँ, चांद, मगर सादे और जुड़ाऊ बुन्दे, गले में मोती का कालर, मोती की कंठमाला। रानी हार, जड़ाऊ नेकलेस, गुलाब हार, सितार हार, चन्दन हार, परी हार, तुलसी, चिक, कण्ठा, ज़ंजीर, हाथों में मोती के दस्तबन्द, जड़ाऊ जोड़े, ब्रेस्लेट, कड़े मन्के।'

मैं सर खुजलाने लगा। मुंह से एक बड़ी लम्बी उफ़ निकल पड़ी। काश, मेरा हाफ़ज़ा भी तेज़ होता और इस तरह हिस्टरी के वाक़ेआत याद रहते तो यक़ीनन दर्जा अव्वल में एफ़० ए० पास करता।

वहाँ से उठकर प्रोफेसर साहब की तरफ़ जा रहा था, इतने में चन्दा मुझे एक तरफ़ घसीट कर ले गया। वहाँ जग्गी, हरी, प्यारे, सुन्दर मुख्तलिफ़ रंगों के सूट पहने बड़े इतमिनान से गपशप कर रहे थे। मुझे देखते ही फ़िक़रे बाज़ी शुरू हो गई।

जग्गी—आप इधर कोने में क्यों बैठे हुए हैं?

प्यारे—क्या माजरा है, कोई बात ज़रूर है।

हरी—यार, हमें भी तो बतलाओ।

मैंने झुँलला कर कहा—क्या दिमाग़ में कुछ खलल हो गया है।

.खैर थोड़ी देर तक इसी तरह से हँसी मज़ाक होता रहा ! फिर दूसरी बात छिड़ी।

सुन्दर—'भाई, तुम शादी के मुताल्लिक क्या कहते हो ?'

प्यारे—'मैं आज डोरा रसेल की एक किताब पढ़ रहा था, वह कहती है कि 'मैरिज इज़ ए पार्टनरशिप फ़ार मैनुफ़ैक्चरिंग चिल्ड्रेन।'

जग्गी—'ख़ैर, यह भी दुरुस्त है। लेकिन इनसे यह भी कह देना चाहिये कि 'मैरिज इज़ ऐन आनेस्ट एण्ड स्ट्रेटफ़ारवर्ड कंपटीशन इन ह्विच दि ओल्डर फ़र्स्ट लूज़ेज़ दि गेम।'

सुन्दर—'वाह क्या कही है ! (मेरी तरफ़ देखकर) तुम क्या कहते हो ?"

मैं—'बिल्कुल दुरुस्त है !'

इतने में हुल्लड़ हुआ—बरात आ गई। इतना सुनना था कि सब, क्या बच्चा, क्या बूढ़ा, बुरी तरह से भागे। जाये नशिश्त बिल्कुल ख़ाली हो गई ! मेरे ख़याल में वहाँ सिर्फ़ मैं और प्रोफ़ेसर साहब रह गए। मैंने उन्हें आध घण्टे की आप बीती सुनाई।

प्रोफ़ेसर—'तुमने अपने तजुरबे में इज़ाफ़ा तो काफ़ी कर लिया। लेकिन एक बात रह गई।'

मैं—'वह क्या ?'

प्रोफ़ेसर—'तुमने बुज़रगों की बातें सुनीं ! बड़माजियों की कानाफूसी को ग़ौर से सुना। नौजवानों के बीच में बैठे। लेकिन लड़कियाँ रह गईं।'

मैं—'माफ़ करिये, सिर पर ज्यादा बाल नहीं हैं।'

प्रोफ़ेसर साहब हँसने लगे। नौशा घर में दाख़िल हो गया। दस पन्द्रह मिनट के बाद ही सब खाना खाने बैठे। शान्ताजी के भाई ने अपने दोस्तों को भी बुलाया था। इन लोगों के खाने के

लिये बाहर इन्तेज़ाम किया गया था। इनमें से दो साहब ग़ालिबन भूले भटके साथ में आकर बैठ गये थे। वे लोग एक एक कोने में थे। किसी को क्या ख़बर थी कि वे कौन हैं।

मैं और प्रोफेसर साहब बराबर बैठे हुए थे। हमारे सामने एक पंडित साहब भी थे। मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। आप किसी ज़माने में पुलिस में थे मगर अब उस मेहकमे से किनारा कश हो गये हैं। हालांकि इनका वक्त से पहले नौकरी से हटना सारे मेहकमए पुलिस के लिए बाइसे मलाल था। इन्सपेक्टर साहब के सामने पत्तल ख़ाली पड़ा था। आप रह रह कर अपनी ख़ौफ़नाक मूछों को ख़म दे रहे थे। आँख तो एक जगह ठहरती ही न थी। पुलिसवालों की नज़रों से कौन बच सकता है। इन दोनों साहबज़ादों को देख ही लिया। थोड़ी देर तक इनकी तरफ़ ग़ौर से देखते रहे। फिर मुझसे बोले—

'तुम इन दो लड़कों को जानते हो?'

मुझे खुद हैरत हुई कि अन्सहाब यहाँ कैसे टपक पड़े— 'हाँ, मेरे दरजे में पढ़ते हैं।'

'कशमीरी तो नहीं मालूम होते।'

'जी नहीं, ग़ैर बिरादरी के हैं।'

इतना सुनना था कि इनस्पेकटर साहब ने ग़ुल मचाना शुरू कर दिया—'अब यह नौबत आ गई। मैं अभी उठकर बा आवाज़ बुलन्द कहता हूँ।'

एक वकील साहब इनके पास बैठे हुए थे, जो इनके रिश्तेदारों में से थे। उन्होंने इन्हें समझाया—

'क़िबला यह हिमाकत न कर बैठिये। बाद सारी बिरादरी बैठी हुई है। आप ख़ामखाह ग़ुल मचा रहे हैं।'

किसी तरह इन्हें ख़ामोश करके शान्ता के भाई को बुलाया। उसके कान में कुछ कहा। वह इन लड़कों के पास गया। इनसे

कुछ कहकर इन्हें अपने साथ बाहर ले गया। यह क़िस्सा इस तरह से ख़तम हुआ।

खाने के बाद नाच गाने की महफ़िल क़ायम हुई। हम और प्रोफ़ेसर साहब एक कोने में दबके हुये बैठे थे! थोड़ी ही देर में यहाँ तक नौबत पहुँची कि वह असहाब जो बहुत कहने सुनने से महफ़िल में बैठे थे मौक़ा पाकर पीछे से आगे सरकने लगे। हमारे इन्सपेक्टर साहब तो पहले ही से आगे डटे हुये थे। उसी पुराने अन्दाज़ से मूछों को मरोड़ रहे थे। कभी जब तबियत मचल जाती थी तो मुँह से 'वाह वाह' भी कह बैठते थे। इत्तिफ़ाक़न जोश का पारा एक सौ पाँच डिग्री से भी आगे फिसल गया। जोर से फ़र्माया—'भई वाह, दुलारी जान कमाल करती हो। हां, जरा मेरी लैला का मेहमिल फिर से कहना।' फिर मुँह फेर कर अपने अजीज़ वकील साहब से कहा—'भाई, सुभान अल्ला, वल्लाह कमाल करती है।'

वकील साहब ने मुस्कराते हुए कहा—क़िबला इस वक़्त आपकी तबियत मौज़ू नहीं है, अब आप आराम फरमाएँ।

मुझे यह लीला देखकर बड़ी हँसी आई। प्रोफेसर जो अभी तक किसी सोच में पड़े हुए थे, बोले—

'मैं यह सोच रहा था कि अगर मेरे क़लम में कुछ भी ज़ोर होता तो इन तीन घंटे की डायरी एक दूसरी 'वेनिटी फ़ेयर' बन जाती। शादी ख़ाना क्या है एक स्टेज है। सब अपना-अपना पार्ट अदा कर रहे हैं। रह-रहकर चोले बदलते जाते हैं। आख़िर इनकी असलियत खुल ही जाती है। मैं तो इन तीन घन्टों से यही लीला देख रहा हूँ।'

'अच्छा, अब कल आने का इरादा है कि नहीं।'

'मैं नहीं आऊँगा। आपको भी आने की कोई ज़रूरत नहीं

है। इम्तेहान दूर नहीं है। अब किताबों की तरफ़ तवज्जे कीजिये।'

इसके बाद प्रोफ़ेसर साहब अपने घर तशरीफ़ ले गये और मैंने अपने बोर्डिंग की तरफ़ रुख़ किया।

(२)

मिसेज़ शान्ता और मिस्टर प्राननाथ की शादी को एक अरसा हो गया। बीबी एम० ए०, सूबे के वज़ीर की लड़की। मियाँ बी० ए० (आक्सन) फिर क्या था, इधर यह डिप्टी कलक्टर हुए, इलाहाबाद को अपने क़दम मुबारक से रौनक़ अफ़रोज़ किया, उधर वो धड़ाके से म्युनिसिपिल बोर्ड की मेम्बर हो गईं। मुख़्तलिफ़ गर्ल्स स्कूलों की मंत्राणी बनीं। लेडीज़ क्लब की बुनियाद डाल कर उसकी भी सेक्रेटरी बन बैठीं। नतीज़ा यह कि मियाँ बीबी दोनों अपने-अपने कामों में मशग़ूल थे।

मिस्टर और मिसेज़ प्राननाथ की सोसाइटी में ख़ूब धूम थी। चाय और डिनर के अलावा वह बोर्डिंगों के मुबाहेसों में भी शरीक़ होते थे। अकसर मिसेज़ प्रान नाम सदर बनतीं। और मिस्टर प्राणनाथ बड़े ग़ौर से इनका लेकचर सुनते। इसमें कोई शक नहीं कि मिसेज़ शान्ता ख़ूब ही बोलती थीं, उनकी दिलकश आवाज़ में एक अजीब लोच था। इतनी तेज़ बोलती थीं कि मजाल है कहीं अटक जाएँ। उनकी अँग्रेजी इतनी प्यारी होती थी कि युनिवरसिटी के तालिब इल्म और प्रोफेसर अश-अश करने लगते थे। क़दर दोनों की होती थी लेकिन अकसर मिसेज़ की निसबत मिस्टर की कम।

एक दिन का क़िस्सा है। हमारे बोर्डिङ्ग में एक बड़े लीडर का लेक्चर होनेवाला था। मिसेज़ शान्ता उस जलसे की सदर बनाई गईं, उस रोज़ इत्तिफ़ाकन हमारे मिस्टर और मिसेज़ कुछ

देर से पहुँचे। जैसे ही उनकी मोटर रुकी, बोर्डिंग के लड़कों ने मिसेज़ शान्ता का बड़ी गर्म जोशी से इस्तेक़बाल किया। उनको हार पहनाया गया। लेकिन जल्दी में मिस्टर की किसी ने खबर न ली। बीबो तो सदारत की कुरसी पर जा धमकीं लेकिन प्राणनाथ जी हाल के अन्दर भी न घुस सके। मैं यह देख रहा था। कुछ हँसी आती थी कुछ उन पर तरस! उनके पास पहुँचा।

'आइये, मैं दूसरे रास्ते से आपको अन्दर ले चलूँ।'

'नहीं, अब आप तकलीफ़ मत कीजिये। मुझे अभी एक और जगह जाना है।' (इनका चेहरा ग़ालिबन गुस्से से तमतमा रहा था)

'कम अज़ कम प्रेसीडेन्शियल रिमार्क्स तो सुन लीजिये।'

वह और झुंझला गये। किसी तरह गुस्से को जब्त करके बोले—'आप इतनी तकलीफ़ कीजिये, लेक्चर जब खतम हो जाय तो शान्ता जी से यह कह दीजियेगा कि मैं एक काम से दूसरी जगह चला गया। मोटर अभी भेजे देता हूँ।'

इतना कहकर डिप्टी साहब रवाना हो गये। इतने में हाल के अन्दर शोर हुआ। मैंने झांक कर देखा। शान्ता जी बोलने के लिये खड़ी हुई थीं।

(३)

एक दिन मैं सीधा कालेज से प्रोफेसर साहब के यहाँ पहुँचा। वह किसी काम से प्राणनाथ जी के यहाँ जा रहे थे। मुझे भी चलने को कहा। मुझे कब इन्कार होता। पब्लिक में तो इस युगल जोड़ी को अच्छी तरह से देख चुका था। अब घर में इन दोनों को देखने का बहुत शौक़ था।

क़रीब चार बजे डिप्टी साहब के बँगले में दाखिल हुये। खुशक़िस्मती से उसी वक़्त डिप्टी साहब भी दफ़्तर से लौटे थे। हम तीनों अन्दर दाखिल हुए। खिदमतगार हाज़िर था।

उसने डिप्टी साहब के कपड़े उतारे। फिर वे कपड़े बदल कर इत्मिनान से बैठे। कुछ ख़याल आया—

'बलदेव!'

'हाज़िर सरकार!'

'मेम साहब कहाँ हैं?'

'हुज़ूर खाना खा के ज़नाने स्कूल गई थीं। वहाँ से अभी वापिस नहीं आईं।'

नौकर हाथ बाँधे सामने खड़ा था। डिप्टी साहब किसी सोच में पड़ गये। प्रोफेसर साहब ने पास ही पड़ी हुई एक किताब उठा ली और इस तरह ग़र्क हो गये जैसे उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। मैंने भी उनकी देखा-देखी एक किताब उठा ली।

'बलदेव, जल्दी से चाय लाओ।'

चाय आ गई। हम सब लोगों ने चाय पी। इस दरमियान में डिप्टी साहब ने ज़्यादा बातचीत नहीं की। फिर क्लब जाने की तय्यारी करने लगे। बलदेव ने कपड़े लाकर रखे। पतलून पहनने लगे तो मालूम हुआ चन्द बटन ग़ायब हैं। ख़ैर, पेटी से कमर कसी। जब कोट पहना तो मालूम हुआ जेब के पास की सीवन उधड़ गई है। वह कुछ कहने ही वाले थे कि खट-पट की आवाज़ सुनाई दी। मेम साहब तशरीफ़ लाईं। डिप्टी साहब ने हम लोगों से तआरुफ कराया। हमसे दो एक बातें कीं, फिर डिप्टी साहब से फरमाया—प्रान! देखो, मैं जो तुमसे कहती थी, वही हुआ। स्कूल की कमेटी के मेम्बर ख्वामख्वाह मेरी मुख़ालफ़त कर रहे हैं। मैंने तो सोच लिया है कि अगर उन्होंने मेरी बात सुनी तो ख़ैर, वरना मैं इस स्कूल से सारा ताल्लुक काट दूँगी।

मैंने प्रोफेसर साहब की तरफ़ देखा। वह किताब पढ़ने में मशग़ूल थे। फिर डिप्टी साहब की तरफ़ नज़र दौड़ाई। मुझे

यह मालूम हुआ कि उन्हें शान्ता जी की बातों से कोई हमदर्दी नहीं थी। बजाय उनकी बात सुनने के वह अपनी फटी जेब की तरफ़ देख रहे थे। शान्ता जी की बात का जवाब न देकर बहुत डरते-डरते कहा—

'ज़रा इसे सी दीजिये।'

शान्ता जी ने हम लोगों के सामने डिप्टी साहब की बात को टालना मुनासिब न समझा—नौकर को आवाज़ दी। वह जल्दी से उनका सीने के सामान का मखमली बक्स ले आया। सुई हाथ में ली। डिप्टी साहब कोट उतारने लगे।

'तुम कोट क्यों उतारते हो? मैं ऐसे ही सी दूँगी।'

डिप्टी साहब वैसे ही खड़े रहे। मेम साहब ने आपरेशन शुरू कर दिया। मैं उनकी सिलाई को बड़े ग़ौर से देखता रहा। यका-यक डिप्टी साहब अपनी जगह से उछल पड़े।

'मैं ऐसी सिलाई से बाज़ आया। आप तो मेरा बदन छेद डालियेगा!' मेम साहब हँसने लगीं। डिप्टी साहब ने कोट उतार कर शान्ता जी को दे दिया। उन्होंने बमुश्किल तमाम उसको दुरुस्त किया।

शान्ता (मेरी तरफ़ खिताब करके)—'आज तो आपके बोर्डिंग में डिबेट है। अभी वहाँ जाना है।'

प्राणनाथ—'तो क्या अब आप फिर कहीं जाइयेगा?'

शान्ता—'हाँ, मुझे वहाँ जाना ज़रूरी है। अब वक्त़ हो गया है। चलना चाहिये।'

डिप्टी साहब पहले तो जाने के लिये तैय्यार ही नहीं थे, लेकिन बहुत कहने सुनने से उनकी समझ में आ गया। सब लोग हमारे बोर्डिंग रवाना हुये।

शान्ता जी सदर बनीं। मज़मून था—'औरतों को सियासी और पब्लिक कामों में हिस्सा लेना चाहिये या नहीं।' हाल खचा-खच भरा हुआ था। दो चार मशहूर वकील भी बोले। एक साहब कुछ बोल रहे थे कि प्रोफेसर साहब को कुछ सूझी। अपनी जगह से उठकर शान्ता जी के पास गये और उनसे धीरे से कुछ कहा। कहकर अपनी जगह पर वापिस आ गये। जो साहब बोल रहे थे, वह बैठ गये। अब शान्ता जी दूसरे बोलनेवाले शख़्स का नाम पुकारने उठीं और बड़े अन्दाज़ से कहा—

'मिस्टर प्राणनाथ!'

डिप्टी साहब सन्नाटे में आ गये। चन्द सेकन्ड तक अपनी जगह पर बैठे रहे। फिर उठे और धीरे-धीरे डाएस पर आकर खड़े हो गये। कुछ लमहों के बाद बोलना शुरू किया—

'पहले मेरा ख़ुद ख्याल था कि क्या वजह है कि औरतें सियासी और पब्लिक कामों में हिस्सा न लें। लेकिन अब मेरा ख़याल बदल गया है। मैं दो-चार आप-बीती बातें कहना चाहता हूँ। मैं थका-मांदा दफ्तर से घर आता हूं। मेम साहबा को नहीं पाता। पब्लिक के काम अक्सर उन्हें घर से बाहर रखा करते हैं। घर उजड़ा सा रहता है। घर के कामों की गुत्थियाँ सुलझाना मेरे बस की बात नहीं है। नौकर मनमानी कार्रवाइयाँ करते हैं। मेरे कपड़े फट जाते हैं। कोई पुरसान हाल नहीं होता है। अगर खुशकिस्मती से देवी जी घर पर ही हुईं तो बजाय इसके कि कोई मीठी बात करें किसी सियासी मज़मून में उलझ जाती हैं। मेरा दिमाग़ और भी परागन्दा हो जाता है। इस हालत को देखते हुए मैं तो यही कहूँगा कि औरत को हरगिज़ इन झमेलों में पड़ना ही नहीं चाहिये।'

डिप्टी साहब अपनी जगह पर आकर बैठ गये। बहुत देर तक तालियाँ बजती रहीं। थोड़ी देर के बाद मुबाहसे का शोर व शर ख़तम हुआ। सब लोग अपने-अपने ठिकाने जाने लगे। मैंने चलते-चलते शान्ता जी की तरफ़ देखा। उनका रुख कुछ पलटा हुआ नज़र आया।

तीन चार दिन के बाद अख़बार में यह ख़बर पढ़कर मैं चौंक पड़ा कि—'हमें यह सुनकर बड़ा अफसोस हुआ कि चन्द वजूहात से मिसेज़ शान्ता ने पब्लिक के कामों से किनारा कशी इख़्तियार करने का इरादा कर लिया है। देवी जी की ज़ात से जो पब्लिक को फायदे पहुँचे, उससे पब्लिक उनकी बहुत मशकूर है। हम उस दिन के मुन्तज़िर हैं, जिस दिन देवी जी फिर पब्लिक की इमदाद का बीड़ा उठाएँगी।'

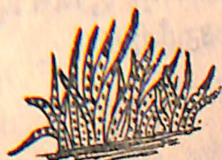
(४)

मिसेज़ शान्ता अब कहीं नहीं आती जातीं। डिप्टी साहब ने भी क्लब जाना छोड़ दिया है। कभी भूले-भटके वहाँ पहुँच गये तो ख़ैर, वरना वह भी नहीं। एक दिन मुझे एक काम से उनके दफ़्तर जाना पड़ा। चार बजनेवाले थे। वह मुझे अपने साथ अपने बँगले ले आए।

यहाँ शान्ता जी से मुलाक़ात हुई। मुझे उनकी काया पलटी हुई नज़र आई। मेज़ पर चाय का सामान लगा हुआ था और वे डिप्टी साहब के आने का इन्तिज़ार कर रही थीं। बड़े इतमिनान से हम लोगों ने चाय पी। अब की किसी ने कोई सियासी मसला नहीं छेड़ा। बक़ौल डिप्टी साहब के मीठी-मीठी बातें हो रही थीं। थोड़ी देर में ही डिप्टी साहब के मुरझाए हुए चेहरे पर शादाबी आ गई।

मैं घण्टा दो घण्टा वहाँ बैठा। फिर वे दोनों मोटर पर सैर करने निकल गये और मैं अपने बोर्डिंग चला आया। दूसरे दिन प्रोफेसर साहब से मिला तो मैंने कहा—'आपने तो बात की बात में शान्ता जी में ग़ज़ब की तबदीली पैदा करा दी।'

प्रोफेसर साहब ने कुछ सोचते हुए जवाब दिया—'लड़की अक़्लमन्द है। ज़रा से इशारे में समझ गई और फ़ौरन रास्ते पर आ गई।'





लेखक (पण्डित शिवनाथ काटजू)—सन् १९३२ में
कम्पनी सार्जेण्ट मेजर

होली

(१)

प्रकाशनारायण जी बड़े लोगों में गिने जाते हैं। लड़की की शादी थी ! फिर धूम-धाम का क्या कहना ! घर में कुनबे के बहुत से अज़ीज़ व रिश्तेदार जमा थे। चौबीसों घण्टे चहल-पहल रहती थी।

मोहिनी ने अभी उन्नीसवें साल में क़दम रखा। प्रकाशनारायण जी ने उसकी तालीम में कोई बात उठा नहीं रखी। कुछ अर्से तक घर में मेम से पढ़ाया, फिर लड़की को अंग्रेज़ी स्कूल में भर्ती किया। मोहिनी ज़हीन थी। सीनियर कैमब्रिज में आनर के साथ पास हुई। अब उसकी शादी थी।

मेंहदी से एक रोज पहिले का वाक़ेआ है। प्रकाशनारायण जी घर में खाना खाने आए। इनकी बड़ी भावज ने इन्हें आवाज़ दी। ये उनके पास पहुँचे।

'प्रकाश जी, तुम भी ग़ज़ब करते हो ! अब तक लड़की के कान तक नहीं छिदवाये। अटेहरू कैसे पहनेगी ?'

'भाभी जी, इन छोटी-छोटी बातों में क्या रखा है ?'

'वाह, तुम तो बच्चों जैसी बातें करते हो। यह बातें औरों के यहाँ निभ जायेंगी। लेकिन भला जीवननाथ जी वालों को कब गवारा होगा ?'

'वह देखिये, मोहनी वहाँ बैठी हुई है। अब आप ही उसे समझाइए।'

'मैं क्या समझाऊँ! जब बड़े ही ढील देंगे तो बच्चे ज़रूर आसमान पर नाचेंगे।'

भला प्रकाशनारायण जी को ऐसी दक़ियानूसी बातें सुनने की कहाँ फ़ुर्सत थी। एक बड़ा सा क़हक़हा लगा के खिसक गए।

(२)

श्यामसुन्दर जी सिंगल से डबल होकर घर लौट आए। दस अगस्त को बारात वापिस आई थी। १५ अगस्त को वह विलायत तशरीफ़ ले जा रहे थे। आपने इसी साल बी० ए० पास किया था। अब बैरिस्ट्री के लिये इंगलिस्तान जा रहे थे। अकसर लोगों का यह ख़याल है कि पहले लड़के की शादी कर के फिर उसे विलायत भेजना चाहिये। जीवननाथ जी भी उन्हीं लोगों में से थे। चुनान्चे पहले से ही उन्होंने यह इरादा कर लिया था कि लड़के की शादी करते ही उसे विलायत रवाना कर दूँगा।

श्यामसुन्दर जी अपना सामान बाँधने के फेर में पड़े हुये थे। उनकी चाची जान भी उनका हाथ बटाने आ गईं। बातों में उन्होंने कहा—

'न कहोगे, कैसी सुन्दरी बहू लाई हूँ!'

श्यामसुन्दर जी—हाँ, आपको तो सिवा मज़ाक़ के और कुछ सूझता ही नहीं। मैंने आपसे पहले ही कह दिया कि बग़ैर मेरी सलाह लिये कोई बात नहीं होनी चाहिये। लेकिन यहाँ मेरी सुनता ही कौन है!'

'तो तुम अपनी पसंद करके कोई कोहक़ाफ़ की परी पकड़ लाते?'

'उनकी जैसी मेम साहेबा तो नहीं लाता।'

'तो फिर कोई फूहड़ ले आते।'

'वह लाख ख़ूबसूरत हों तो क्या हुआ। कोई बात है। फ़ैशन के पीछे मतवाली हैं। ज़रा बालों को देखिये! मरदों की तरह तराशे हुये हैं। अटेहरू❀ कानों के ऊपर अटके हुए हैं। कल ज़रा झुकीं तो नीचे लुढ़क गये। आपको हँसी आ गई। आप ही सोचिये, अम्मा जी को कितना बुरा लगा होगा। मैं यहाँ सामान बाँधते-बाँधते हैरान हो गया। लेकिन उन्हें अपनी किताबों से ही फुरसत नहीं मिलती। मैं आपसे सच-सच कहता हूँ। मेरा इनका निभाव नहीं हो सकता।'

चाची—अच्छा, यह तो बताओ कोई बातें भी हुईं।

'बातें क्या हों! मैं इनसे बोलना कब पसंद करता हूँ। दूर ही दूर रहना अच्छा। आज इत्तिफ़ाक़ से सामना हो गया। आपने अँग्रेज़ी में कुछ कहा। मैंने मुँह फेर लिया और बिना जवाब दिये ही खिसक गया।'

चाची—तुमसे अँग्रेजी में जवाब ही न दिया गया होगा। इसलिये झेंप के भाग खड़े हुये।'

'अभी तो आप इन बातों को मज़ाक में उड़ा रही हैं। थोड़े दिनों में आपको मालूम हो जायगा कि श्यामसुन्दर जो कहता है, वह करके दिखाता है।'

चाची ने मुस्कराते हुये कहा—'चलो, तुम्हारे ऐसे शहसवार बहुत देखे हैं। एक तुम्हारे चचा जान बहुत कह-कह के दिखाते हैं। अब उनके भतीजे कुछ करके दिखायेंगे।'

(३)

श्यामसुन्दर जी को विलायत गये ढाई-तीन साल का अर्सा हो गया। न चलते वक्त वह मोहिनी से रुखसत हुए थे, न बाद में

❀ सुहाग का आभूषण जो कान में लटका कर पहनते हैं।

उसकी कुछ खबर ली। मोहिनी हर हफ्ते उन्हें खत भेजती। अपनी अँग्रेजी की सारी लियाक़त इन खतों में सर्फ कर देती। लेकिन बेफ़ायदा। विलायत की डाक घर में आती लेकिन उसके नाम कोई खत न होता।

मोहिनी में लड़कपन एक हद तक था। और क्यों न हो! वह लड़की ही थी। कुछ दिनों तक तो उसे कुछ पता ही न चला। फिर धीरे-धीरे उस पर यह राज़ खुलने लगा कि श्यामसुन्दर को उसका मुतालिक़ खयाल नहीं है। वह खुद हैरान थी कि यह क्या माजरा है। उसकी सारी उम्मीदों पर पानी फिरने लगा। ससुराल में सिवाय चाची के उसका और कोई हमदर्द नहीं था। सास पुरानी चाल की थीं। उनको मोहिनी जैसी रौशन खयाल बहू से ज्यादा लगाव कब होता।

मोहिनी एक दुनिया से उठकर दूसरी दुनियां में आ गई थी। अपने मां बाप के यहाँ उसे सिवाय किताबों और खेल-कूद के और किसी चीज़ से सरोकार नहीं था। अब धीरे-धीरे वह पुरानी बातें भूलने लगी। किताबों के साथ-साथ घर के धन्धों का भी साथ होने लगा। चाची उसे नये-नये सबक़ देती थीं और वह उन्हें फ़ौरन ही याद कर लेती।

घर में विलायत की डाक आई। चाची के नाम भी श्यामसुन्दर ने खत लिख भेजा था। चाची ख़त लिये हुए मोहिनी के कमरे में आईं—'मोहिनी, देख, श्यामसुन्दर का ख़त आया है।'

चाची से कोई तकल्लुफ़ तो था ही नहीं। मोहिनी ने ख़त ले लिया।

'..........चाची जान, मैं यहाँ का हाल आपको क्या लिखूँ। आप लोग जिसे स्वर्ग कहते हैं, वह हक़ीकत में यही है। इङ्गलिस्तान और योरप को छोड़ कर मेरा हिन्दुस्तान आने को

जी नहीं चाहता। इसके सामने आपका हिन्दुस्तान तो कुछ है ही नहीं। वहाँ रखा क्या है ? यहाँ की इमारतें, यहाँ के लोग, यहाँ का रहन-सहन वाक़ई जादू का असर रखते हैं! आपसे क्या-क्या कहूँ। मुबालग़ा नहीं है। अगर आप आइं, तो यक़ीनन आपकी आँखें खुल जाएँगी। मेरा पढ़ाई तो अनक़रीबन ख़त्म हो चुकी है, लेकिन मैं अभी हिन्दुस्तान नहीं आऊँगा। साल भर तक ओरे (योरप) में घूमूँगा। आने की जल्दी ही क्या है!'

इतना पढ़कर मोहिनी उदास हो गई। फिर थोड़ी देर के बाद बड़े दुख भरे अल्फ़ाज़ में बोली—न मालूम क्यों मेरे इतने ख़तों का एक भी जवाब नहीं दिया ?

चाची ने पीठ थपथपाते हुए कहा—तो कौन सी बड़ी बात है बीबी रानी ! यह ख़तोकिताबत तो नई चलन है। भाई जी के वक़्तों में ऐसा थोड़ी होता था। अब थोड़े दिनों में वह आ ही रहा है। अपने आप दुरुस्त हो जायगा।

(४)

घर में चिराग़ जल गये थे। चाची बड़ी देर से अपने कमरे में बैठी हुई कुछ सी रही थीं। इतने में मोहिनी उनके पास पहुँची—भाभी साहब, मेरे कान छेद दीजिये।

चाची चकराइँ कि यकायक इसको यह क्या सूझी। पहले तो कुछ देर तक उसकी तरफ़ देखती रहीं। फिर बोलीं—बहुत दिनों के बाद तुम्हें ख्याल आया। इस वक्त बैठे-बिठाये इधर ख्याल कैसे दौड़ा ?

मोहिनी—आप बातचीत तो बाद में करिएगा ! पहले जो मैं कहती हूँ, वह कर दीजिए।

चाची—तो क्या इसी वक्त ? कल डाक्टर को बुलवा लेना वह अच्छी तरह से कान छेद देगा।

मोहिनी मानी ही नहीं। आखिरकार चाची जान खुद डाक्टर बनीं। उन्होने बड़ी सफ़ाई से आपरेशन कर दिया। मोहिनी पर क्या गुज़री। यह वे ही जाने, जिनके कान बड़ी उमर में छिदे हों। फिर भी इस ग़रीब ने बड़े सबर से काम लिया। बाद में चाची मुस्कराते हुए बोलीं—रोईं नहीं। अपने वक़्त में तो मैंने बड़ा शोर मचाया था।

मोहिनी ने कुछ जवाब नहीं दिया।

(५)

दूसरे दिन तड़के ही मोहिनी हाथ में एक छोटी सी पोटली लिये हुए मकान की सबसे ऊँची छत पर चढ़ गई। चारों तरफ़ सन्नाटा था। दुनियावाले गफ़लत की नींद में सो रहे थे। नीचे अँधेरा था। कुछ नज़र नहीं आता था। ऊपर तारे रुख़सत की तैय्यारी कर रहे थे। भीनी-भीनी खुशगवार हवा कलियों को चटकाने के लिये उड़ी जा रही थी।

मोहिनी अपने काम में मसरूफ़ हो गई। पहले पानी से फ़र्श का कुछ हिस्सा धोया। उस पर एक छोटा सा क़ालीन बिछाकर बैठ गई। सामने एक छोटी सी चौकी पर शिव जी की मूर्ति को बिठाया। इन्हें नहलाया, फूल चढ़ाये, फिर कानों में अटेहरू पहने। उन पर भी टीका लगाया, फूल चढ़ाए। वह चौकी, जिस पर शिव जी विराजमान थे, ज़्यादा ऊँची नहीं थी। मोहिनी का सिर धीरे-धीरे झुकने लगा और उसके एक किनारे से लग गया.............।

चारों तरफ़ बरफ़ ही बरफ़ थी। जैसे ईश्वर की ज्योति फैली हुई हो। पहाड़ों की चोटियाँ आसमान से टकरा रही थीं। एक पहाड़ की चोटी पर एक बड़ी खूबसूरत कुटी बनी हुई थी—बिल्कुल सफ़ेद। वह बरफ़ की थी। उस कुटी के एक तरफ़ एक चश्मा

था, जिसका पानी बड़े ज़ोरों से नीचे बह रहा था। पानी पहाड़ को काटता हुआ न मालूम किधर जा रहा था।

कुटी के अन्दर बरफ़ के चबूतरे पर एक पुरुष और एक स्त्री बैठी थी। पुरुष के लम्बे-लम्बे बाल खुले हुए थे। उनमें से पानी की एक धार निकल रही थी। शायद वह वही पानी था, जिसने बाहर चश्में का रूप ले लिया था। वह पुरुष सिर्फ़ एक मृगछाला पहने हुए था। उसकी शकल नूरानी थी। स्त्री का पहनावा भी बहुत सादा था। उसकी आयु ज़्यादा न होगी। चेहरा भोला ज़रूर था लेकिन वह तेज से भरा था। वह आँखें बन्द किये किसी सोच में डूबी हुई थी। यकायक उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें खोलीं और उस पुरुष की तरफ़ देखकर बोली—भगवन, एक लड़की मेरी आराधना कर रही है। उसका दुःख दूर करो।

'उमा, संसार में दुःख-सुख की कहानियाँ तो रोज़ ही लगी रहती हैं। दुःख के बाद सुख है और सुख के बाद दुःख। अच्छा, यह कहो, क्या तुम अब सखी हो?'

'मुझसे अधिक सुखी और कौन हो सकता है?'

'तुम्हें याद है कि कैलास पर आने से पहले तुमने क्या-क्या मुसीबतें उठाई थीं?'

उमा ने धीरे से कहा—नहीं, मुझे कुछ याद नहीं है।

'उमा, तुम आँखें बन्द कर लो। मैं जो-जो कहूँगा, उसका चित्र तुम्हारे सामने खिंचता जाएगा।'

भगवान् शंकर सँभल कर बैठ गए। थोड़ी देर तक उमा की तरफ़ देखते रहे। उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। उन्होंने फिर कहना शुरू किया—उमा, तूने मेरे लिये अपना घर छोड़ दिया और हिमालय की एक चोटी पर बैठकर मेरी आराधना म लीन हो गई। तू अपने आपको भूल गई। तेरे मन में केवल एक विचार था और वह था मेरा। पर्वतों की शीतल वायु

तेरे शरीर को चुभती थी लेकिन इसका तुझ पर कुछ प्रभाव न हुआ—तू मुझमें ही लीन थी। न मालूम वनों के कितने भयानक पशु तेरे पास से चले गए, लेकिन वह तेरा कुछ न बिगाड़ सके। तू तो मेरे ध्यान में मग्न थी। तेरी कठोर तपस्या को देख कर देवताओं ने तेरे ऊपर अनेक रंगों के फूल बरसाए। लेकिन तूने इन सुगन्धित पुष्पों की ओर दृष्टि तक नहीं की। तू मेरे ध्यान में ही लीन थी।

शंकर अभी कुछ और कहना चाहते थे कि इतने में उमा ने घबरा कर आँखें खोल दीं।

'नहीं। मैं अब और अधिक नहीं देखूँगी।'

शंकर हँसने लगे। कैलास गूँज उठा।

'इतना ही देख कर तुम अधीर हो गईं। तुमने बड़े कष्ट झेल कर मुझे पाया है।'

'भगवान्! यह तो हो गया। मेरी यह प्रार्थना है कि अब मोहिनी का दुःख दूर कर दीजिये।'

शंकर कुछ सोचकर बोले—अच्छा, ऐसा ही होगा।

❀ ❀ ❀

मोहिनी ने अपना मुँह उठाया। पौ फट गई थी। पूरब का मुँह लाल हो गया था। चिड़ियाँ अलग गुल शोर मचा रही थीं। मोहिनी को ऐसा मालूम हुआ, जैसे चिड़ियों के शोर-गुल ने उसे सुबह की मीठी नींद से जगा दिया। यह सोच कर कि मैं बड़ी देर तक चौकी पर सर झुकाए रही। उसे खुद हैरत हुई। इस दरमियान में वह इस दुनिया से उड़ कर किसी और दुनिया की सैर कर आई थी। बहुत कुछ देख और सुन आई थी।

जल्दी-जल्दी उसने पूजा का सामान लपेटा और खुश-खुश नीचे उतर आई। यह शायद पहला ही मौक़ा था कि

उसने पूजा की हो। उसे श्लोक और स्तुतियाँ तो याद थीं ही नहीं। फिर भी उसने पूजा कर ही ली और इसमें कोई शक नहीं कि उसकी पूजा बहुतों की पूजा से अच्छी थी। उसने भगवान् से जो कुछ कहा, सोच-समझ कर कहा। लेकिन वह ख़ुद यह न समझी कि मैं क्या कह गई।

(६)

होली से एक दिन पहले रात के ग्यारह बजे श्यामसुन्दर जी मुद्दत के बाद घर में दाख़िल हुए। ऐसे मौक़ों पर जो होता है, वही हुआ। खुशियाँ हुईं। क़हक़हे उड़े। आँसू बहाये गए। खाना खा-पी के श्यामसुन्दर जी एक कमरे में दाख़िल हो गये। बेचारी मोहिनी की तरफ़ रुख़ भी नहीं किया। वह अपने कमरे में बड़ी देर तक उनका इन्तज़ार करती रही। चाँदनी रात थी। बड़ी देर तक चाँद को देखकर वक़्त काटा। लेकिन श्यामसुन्दर उधर क्यों आने लगे! ख़ैर, किसी तरह वह रात ख़तम हुई।

दूसरे दिन सुबह ही होली का हंगामा मचा। श्यामसुन्दर जी विलायत से आये थे। उन्हें भला यह तूफ़ान बदतमीज़ी क्यों कर गंवारा हो। कमरे से निकले ही नहीं। उनके कुछ पुराने साथी आए। उन्होंने इसरार किया, लेकिन वह टस से मस न हुए। जब लोगों ने बहुत सताया, तो झल्ला कर अँगरेजी में बोले—'अगर होली हिन्दू धर्म के अन्दर है तो मैं हिन्दू नहीं हूँ। यह बर्बरता की निशानी है।'

ऐसों ही के साथ तो होली में लुत्फ़ आता है। लोगों ने अच्छी तरह मरम्मत की। उन्होंने बहुत कुछ कहा-सुना, लेकिन उससे होता ही क्या है। लोग अपना काम तमाम करके रवाना हो गए।

आप नहा-धोकर बैठे। खाने का इन्तिज़ार था। इतने में न मालूम कहाँ से एक पिचकारी पड़ी, सर से पैर तक तर हो गये। हैरान थे कि यह बला कहाँ से आई। मुड़ कर जो देखा, तो मोहिनी खड़ी हुई थी। आप पहले तो उसकी तरफ़ टकटकी बाँध कर देखते रहे। फिर यकायक जोश चढ़ आया। पास ही मेज़ पर एक गुलदस्ता रखा हुआ था। लपक कर उसे उठाया। फूल एक तरफ़ फेंके। पानी मोहिनी पर लुढ़का दिया। वह भी तर हो गई।

थोड़ी देर तक दोनों बड़े ग़ौर से एक दूसरे की तरफ़ देखते रहे। श्यामसुन्दर के चेहरे पर हँसी आ गई। मोहिनी भी मुस्करा दी। होली के रंगीन पानी ने श्यामसुन्दर के दिमाग़ की सारी मलिनता धो दी।

दोनों पानी से भीगे हुए थे लेकिन इसका ध्यान ही नहीं रहा। दोनों बातों में सब भूल गए। चाची आईं। इन लोगों को उस हालत में देखकर श्यामसुन्दर से बोलीं—हो न आख़िर अपने चचा के भतीजे!

श्यामसुन्दर ने क़हक़हा लगाया। मोहिनी ने गर्दन झुका ली।



कोप

स्त्री समाज की तरक्क़ी ने बहुत सी तबदीली पैदा कर दी है। औरतों की ताक़त पहले परदे में छुपी थी लेकिन अब बे-परदा होकर अपना रंग दिखा रही है। अब कौंसिलों और हाईकोर्ट के इजलासों में इस ताक़त का अन्दाज़ा करना है। यह मसला बहुत फैला हुआ है। उसको महदूद करके एक छोटी सी बात पर ग़ौर कीजिये। आजकल अकसर देखा गया है कि बीबी के आते ही खाविन्द की कायापलट हो जाती है। वह हर ससुराली चीज़ को मुहब्बत की नज़र से देखता है। अपने घर की चीज़ें उसकी आँखों को नहीं भातीं। क़िस्सा मुख़्तसर वह हर चीज़ को अपनी बीबी की नज़र से देखने लगता है। बीबी नचाती है वह नाचता है। वह हँसाती है वह हँसता है। वह प्यार करती है वह उसे मुहब्बत भरी नज़रों से देख कर दुनिया को भूल जाता है। ऐसे शख्स़ की हस्ती बड़ी दिलचस्प है। यह पाक हस्तियाँ पहले भी थीं। लेकिन अब इनकी तादाद तरक्क़ी पर है।

एक बुज़ुर्ग औरत की राय है कि मौजूदा कानून में थोड़ी सी तबदीली हो जाने से ये रोज़-रोज़ के झगड़े खतम हो जाएँगे। फिलहाल लड़का घर में रहता है और लड़की ससुराल जाती है। उनका कहना है कि लड़का ससुराल जाए और लड़की घर में रहे। अगर औरत ने तरक्क़ी की तो मुमकिन है कि यह दिन भी आ जाये, लेकिन अभी उसे ज़माना है। फिलहाल दुनिया में ग़ैरतदार काफ़ी तादाद में मौजूद हैं। हक़ीक़त तो यह है कि

ससुराल की आबोहवा औरत को देवी बना देती है लेकिन मर्द के लिये सख़्त नुक़सान पहुँचानेवाली है।

प्रदुमन जी एक खाते-पीते घराने के अकेले चिराग़ थे। उनके लड़कपन ही में उनके वालिद का इन्तिक़ाल हो गया था। चम्पो जी ने उन्हें मन्नतें रख-रख के बड़ा किया। यह उनकी आँखों के नूर थे। उनको देखकर वह अपना सारा दुःख भूल जाती थीं। बाप-दादा इतना छोड़ गये थे कि लड़के को हाथ-पाँव मारने की कोई ज़रूरत नहीं थी। तालीम से फ़राग़त पाकर प्रदुमन जी घर के काम-काज में लग गए। उम्मीद की जाती थी कि बाप-दादा के रौशन नाम का और ज़्यादा रौशन करेंगे। वे सआदतमन्द थे। लोगों से बहुत अख़लाक से पेश आते थे। माँ से मोहब्बत थी। उनकी इज़्ज़त करते थे, लेकिन बीवी ने आकर उनको क्या से क्या कर दिया। उनकी शख़सियत बीबी की शख़सियत में समा गई। मोहिनी बिलकुल मोहिनी निकली। फ़ैज़ाबाद उनकी नजरों से गिर गया। पंजाब अवध से ज़्यादा अच्छा लगता था। सास की इज़्ज़त माँ से ज़्यादा हो गई। अपने अज़ीज़ों का ख़याल कम हो गया। साले और सालियाँ उनको ज़्यादा भले लगते थे। गरज़ यह कि थोड़े ही अर्से में मोहिनी ने प्रदुमन जी में काफ़ी तबदीली पैदा कर दी।

(२)

बरसात के दिन थे। आसमान पर बादल मँडला रहे थे। सूरज की किरनें बादलों को छेदने की कोशिश कर रही थीं। सुबह की भीनी हवा फ़ूलों को हँसा कर दिलों को खिला रही थी। पुजारी टोकरी में फूल लिये हुये अन्दर घुसा और हर-हर करता हुआ पूजा की कोठरी में दाखिल हो गया। उसे देखकर मोहिनी

ने मुँह बनाते हुए कहा—सुबह हुई नहीं कि यह कान खाने आ गया ! आख़िर इस चीख़-पुकार से फ़ायदा क्या है ?"

प्रदुमन—'ख़ास फ़ायदा क्या होगा, लेकिन इतने दिनों से पूजा हो रही है, अब उसे बन्द कौन करे ?'

मोहिनी—"क्यों ! बन्द करने में क्या हुआ । औरों ने ग़लती की तो उसके यह मतलब नहीं हैं कि तुम भी करो । मुझे यह सब ढकोसले बुरे लगते हैं । सुबह नहीं हुई कि कमबख़्त ने ग़ुल मचाना शुरू किया ! कोई बात है ? तुम आज ही मुन्शी से कह देना कि इसका हिसाब कर दे ।"

प्रदुमन जी ने डरते डरते कहा—'अम्मा को बुरा लगेगा !'

'तुम्हारी अम्मा को ज़रा-ज़रा सी बातें खलती हैं, तो मैं उसका क्या इलाज करूँ । वे सठिया गई हैं । उनकी रसोई में ज़रा सा भी इधर-उधर हो जाए, तो खाना फेंक देती हैं । परसों मैंने उनके मटके में से पानी ले लिया, तो उन्होंने मटका ही फोड़ डाला ! तुम्हीं सोचो कहाँ की अक़्लमन्दी है ?'

प्रदुमन जी ने कुछ कहने की कोशिश की, लेकिन अलफ़ाज़ गले ही में अटक के रह गये ।

मोहिनी ने फिर कहा—आज ही मुन्शी से कह कर पुजारी का हिसाब करा देना । तुम नहीं कहोगे, तो मैं ख़ुद कहला दूँगी ।

प्रदुमन जी ने गर्दन हिला दी ।

(३)

सात बज चुके थे । नीले आसमान पर बादलों ने स्याही फेर दी थी । चिड़ियों के ग़ुल शोर में अजब कैफ़ियत थी । फ़िज़ा पुर लुत्फ़ और दिलफरेब थी, लेकिन घर में कुछ सूनापन था ।

पुजारी की आवाज़ और शङ्ख की गूँज दोनों खामोश थीं। पूजा की कोठरी के दरवाज़े बन्द थे। चम्पो जी के कान पूजा के शोर के आदी हो गये थे। आज की खामोशी ने उनमें एक खास उलझन पैदा कर दी। उनको खयाल हुआ कि कोई बात मामूल के खिलाफ़ हुई है। फिर जल्दी ही असलियत समझ में आ गई। वे नहा के आँगन में निकलीं। पूजा की कोठरी पर नज़र पड़ी!

'यह क्या, महाराज अभी तक नहीं आए? दिन चढ़े घड़ियाँ हो गईं!'

प्रदुमन जी बरामदे में टहल रहे थे। उन्होंने जवाब दिया—'उसे मैंने मौकूफ़ कर दिया।'

चम्पो जी—'मौकूफ़ कर दिया। यह क्यों?'

प्रदुमन—'मुझे इन ढकोसलों में एतक़ाद नहीं है। यह रोज़-रोज़ का शोर बिल्कुल फ़िज़ूल है!'

चम्पो जी—पुजारी को तुमने मौकूफ़ कर दिया, लेकिन अब पूजा कौन करेगा?'

प्रदुमन—'अम्मा, पूजा में रखा क्या है? अब ये बातें बिल्कुल पुरानी हो गई हैं।'

चम्पू—'बेटा! तुम्हारे बाप-दादा ने भगवान की सेवा की। तुम्हारे घर पर लक्ष्मी की कृपा रही। अब तुम इन देवताओं के साथ यह सुलूक करोगे? लोगों से बैर रखना है तो रखो, लेकिन देवताओं से क्यों लड़ते हो? इसमें तुम्हारा भला न होगा। तुम्हें श्रद्धा नहीं है, तो न सही लेकिन तुम्हारे बुज़ुर्गों ने जो किया है, उसे निभा देने में कौन बुराई है?'

प्रदुमन—यह आपने खूब कही। बुज़ुर्गों ने ग़लती की, तो मैं क्यों करूँ! जो उनकी समझ में आया, वह उन्होंने किया। जो मेरी समझ में आएगा, वह मैं करूँगा।'

प्रदुमनजी अपने कमरे में चले गये। चम्पो जी वहीं तख़त पर बैठ गईं। पाँच-छः मिनट के बाद उन्होंने अपनी नौकरानी को बुला कर कहा—'पूजा का सामान ठीक कर। मैं ख़ुद पूजा करूँगी। पुजारी नहीं है, तो क्या हुआ। मैं तो हूँ। मुझसे देवताओं का अनादर नहीं देखा जायेगा।'

थोड़ी देर के बाद वे कोठरी में दाख़िल हुईं और बारह बजे तक पूजा करती रहीं। उनको शङ्का हो गई। 'देवताओं के कोप से क्या नहीं हुआ है। बाल-बच्चों का घर है। कहीं कोई ऊँच-नीच न हो जाए। मेरी नहीं सुनते, तो क्या हुआ। मेरे हाथ-पैर तो सलामत हैं। मुझसे जो हो सकता है, वह ख़ुद ही क्यों न कर लूँ।' आख़िर मां थीं। ममता कहाँ जाती?

उस दिन से बराबर छः घण्टा पूजा करती थीं। बारह बजे उससे छुट्टी पाकर चूल्हे के पास जातीं। डेढ़ दो बजे खाने-पीने से फ़ुर्सत मिलती। हिम्मत क़ायम थी, लेकिन जल्दी ही बुढ़ापे ने अपना रङ्ग दिखाया। बारह दिन इसी तरह गुज़रे, लेकिन तेरहवें दिन उन्हें चारपाई से उठने की ताक़त नहीं थी। तीन दिन तक बुखार तेज़ रहा। चौथे दिन उतरा, लेकिन वे बहुत कमज़ोर हो गई थीं। सातवें दिन इस क़ाबिल हुईं कि खड़ी हो सकें, लेकिन इतनी ताक़त कहाँ कि बैठकर पूजा करें। उन्हें यक़ीन हो गया कि 'देवता नाराज़ हैं! मुझे भी इस क़ाबिल न रखा कि कुछ सेवा कर सकूँ। न मालूम इस घर में क्या होनेवाला है! अब इस घर में रहना धर्म नहीं है।'

उन्होंने तै कर लिया कि 'बनारस जाऊँगी। ज. कुछ हो सकता है, वहीं करूँगी। ऐसी हालत में हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना कौन सी अक़्लमन्दी है!'

प्रदुमन जी ने जब अम्मा के बनारस जाने का सुना, तो मोहिनी से बोले—'अम्मा बनारस जा रही हैं। वहीं रहेंगी!'

'मैं तुमसे पहले ही कह रही थी कि ये अब सठिया गई हैं। उल्टी-उल्टी सोचती हैं!'

प्रदुमन—'आपने पुजारी को निकाल दिया। उसी से नाराज़ हैं।'

'इन सड़ी बातों पर नाराज़ हो जाएँ, तो मैं क्या करूँ!'

प्रदुमन—'लेकिन बनारस में अकेली कहाँ रहेंगी?'

'तुम क्यों बोलते हो? चुप रहो। थोड़े दिनों के बाद अपने आप ही वापिस आ जाएँगी।'

प्रदुमन जी खामोश हो गये।

(४)

बनारस में विश्वनाथ जी के मन्दिर के पास एक धर्मशाला है। उसके एक कमरे में चम्पो जी रहती थीं। पौ फटने में देर थी। चार बज गये थे या बजने ही वाले थे। केतकी यों तो जल्दी उठने की आदी थी, लेकिन मामूल से पहले जग गई। उठते ही उसकी नज़र चम्पो जी पर पड़ी। वे चारपाई पर बैठी हुई थीं। उसने घबड़ा कर कहा—'बऊ जी, आपकी तबियत कैसी है?'

'दो बजे से आँख नहीं लगी। इसी तरह से बैठी हूँ!'

केतकी—'आप लेटती क्यों नहीं?'

चम्पो जी—न मालूम क्या हो गया है! आँख बन्द होते ही ऐसे बुरे-बुरे सुपने आने लगते हैं कि तबियत और परेशान हो जाती है।

केतकी—'बुखार तो नहीं है?'

चम्पो जी—नहीं, बुखार नहीं है, लेकिन कुछ फ़िकर सी हो गई है। न मालुम घर में लोग कैसे हैं?……………यहाँ से सुबह कोई गाड़ी फैज़ाबाद जाती है?'

केतकी—हाँ बऊ जी ! अभी छः बजे एक गाड़ी जाएगी। फैज़ाबाद दस ग्यारह बजे पहुँचती है।

चम्पो जी—अच्छा ! तो अभी फैज़ाबाद चली जा और सबकी खैरियत पूछ के आज रात ही को आ जाना। वहाँ ज्यादा देर न लगाना, नहीं तो मैं और परेशान होऊँगी !

केतकी उठ खड़ी हुई और पन्द्रह-बीस मिनट के बाद धर्म-शाला से रवाना हो गई।

❀ ❀ ❀

दिन भर बारिश होती रही। चम्पो जी विश्वनाथ जी के दर्शन भी न कर सकीं। उन्हें रह-रह के घरवालों का खयाल आ रहा था। कहीं कोई ऊँच-नीच तो नहीं हो गया। उन्होंने देवताओं का अपमान किया है। ऐसा न हो कि कोई अनर्थ हो। वे दिन भर अपने कमरे में बैठी रहीं। घरवालों का खयाल उन्हें परेशान किए हुए था। शाम से केतकी का इन्तज़ार शुरू हो गया। उन्हें एक-एक मिनट पहाड़ लग रहा था। किसी तरह से दस बजे और थोड़ी ही देर के बाद केतकी सामने आई। चम्पो जी ने उसे देखते ही पूछा—घर में सब अच्छे हैं ?

केतकी—'नन्ना को बड़ी माता निकली हैं। आठ दिन से उसका बुरा हाल है। कल तबियत बहुत खराब हो गई थी।'

चम्पो जी ने थोड़ी देर सोच के कहा—'मैं अभी फैज़ाबाद चलूँगी। तू जाकर सवारी का इन्तज़ाम कर।'

केतकी—'अब इस वक़्त कहाँ जाइएगा ? कल तड़के ही चलिए।'

चम्पो जी—'नहीं, मैं अभी जाऊँगी। तू मेरी सुनेगी कि अपनी ही कहे जाएगी!'

❀ ❀ ❀

माता ने नन्ना का बुरा हाल कर दिया था। मोहिनी जी उसके पास बैठी हुई थीं। उनके बाल बिखरे हुए थे और चेहरे से सख़्त परेशानी ज़ाहिर हो रही थी। चम्पो जी ने धीरे से कहा—'नन्ना कैसा है?'

मोहिनी जी ने भी आहिस्ता से जवाब दिया—'चार दिन से आँखें ही नहीं खोली हैं। कल और परसों से बुरी हालत है।'

चम्पो जी चुप हो गईं। थोड़ी देर के बाद मोहिनी ने पूछा—'कहते हैं, माता का ज़ोर नवें दिन से कम होता है?

चम्पो जी—'हाँ!'

मोहिनी—आज नवाँ दिन है।

चम्पो जी—'तुमने माता पुजवा दी थी?'

मोहिनी—'हाँ, एक दो झाड़नेवाले भी आए थे।'

प्रदुमन जी एक तरफ़ कुर्सी पर बैठे हुये थे। चम्पो जी ने उनके पास जाकर कहा—'तुम्हारे ऊपर देवताओं का कोप है।'

प्रदुमन जी ने सिटपिटाते हुए कहा—'क्यों?'

चम्पो जी ने कहा—'पूजा की कोठरी के दरवाज़े बन्द हैं। तुम मुझसे पूछते हो क्यों?'

प्रदुमन जी मोहिनी की तरफ़ देखने लगे। चम्पो जी ने तेज़ होकर कहा—'देखते क्या हो? क्या अभी और कुछ देखना है?'

प्रदुमन जी ने गर्दन झुका ली। चम्पो जी ने नौकर को आवाज़ देकर कहा—'दौड़ते हुए महाराज के पास जा और उनसे कह कि फ़ौरन पूजा करने आएँ।'

पुजारी जी आ गए। उन्होंने ज़ोर-ज़ोर से श्लोक पढ़ने शुरू किए। आँगन गूँज उठा। फिर उन्होंने शङ्ख बजाया और इतने ज़ोर से कि नन्ना ने घबड़ा कर आँखें खोल दीं।

मोहिनी के उदास चेहरे पर खुशी की झलक आई। चम्पो जी ने प्रदुमन जी की तरफ़ देखकर कहा—'देखा बेटा! भगवान् को खुश रखोगे तो तुम भी खुश रहोगे।'



एक प्रिय साथी

२१ नवम्बर १९५६ को बाबर १० दिन का था, जब मेरा छोटा लड़का मार्कण्डेय (राजा) उसे अपने एक साथी के यहाँ से लाया। उसकी मां एलसेशियन कुतिया थी और बाप शायद टेरियर था। बाबर का रङ्ग काला था लेकिन उसकी दोनों आँखों के बीच में माथे पर उठती हुई दो चन्द्राकार सफेद क्यारियाँ थीं—उसकी आँखें गहरे भूरे रङ्ग की थीं। दो तीन दिन तक बाबर ने अपनी मां को याद किया। उसके लिए एक टोकरी में कम्बल के टुकड़े रख कर जगह बनाई गई थी—उसी में वह पड़ा रहता था। लेकिन कुछ दिनों के बाद ही वह चैतन्य हो गया और उसे टोकरी में बिठाना मुश्किल हो गया। वह उसमें से सिर निकाल कर नीचे लुढ़क आता था। सरदी के दिन थे—उसे सुबह और शाम को काफी उढ़ा और लपेट कर रखा जाता था। सुबह वह बच्चों के साथ खेलता था। दिन को मेरी स्त्री राज उसे अपने सामने रखकर बैठती थीं। शाम को वह सब परिवार के साथ कमरे में बैठता था। कभी एक ने उसे गोद में लिया—कभी दूसरे ने। इसी तरह वह हमारे परिवार का एक अंग बन गया। उसके साथ खेलना—उससे प्यार-पुचकार करना हम सभी को अच्छा लगता था। पहिले तो मैं कभी कभी ही उसे लेता था और उससे खेलता था। वह राजा का दुलारा था और वही उसे अधिकतर अपने पास रखता था, लेकिन उसने हलके हलके मुझे भी खींचना शुरू किया और हमारा आपस का प्रेम बढ़ने लगा।

वह बड़ा होने लगा और उसको टोकरी उसके लिये छोटी हो गई। उसके लिए एक और बड़ी टोकरी निकाली गई, लेकिन अब उसे टोकरी में बैठना अच्छा नहीं लगता था। फिर उसके लिए एक छोटा खटोला आया—रात को उसी खटोले पर कम्बल के टुकड़े का बिस्तर बनता था और उस पर बाबर को सुलाया जाता था। दिसम्बर की सरदी थी। उसका ध्यान रखना पड़ता था कि कमरा गन्दा न करे। रात को मैं या राज एक दो बार उसे बाहर निकालते थे। बाबर को एक ऊनी कोट भी पहना दिया गया था। थोड़े दिनों में वह समझ गया कि शौच के लिए उसे बाहर जाना है—कभी कभी वह रात को खुद ही दरवाजे को अपने पैर से खुरचता था और उसकी आवाज से जगकर मैं या राज उसे कुछ मिनट के लिए बाहर निकालते थे। मैंने कई बार राज से कहा कि 'मैं अपने बच्चों के लिए इस तरह से रातों को नहीं उठा, अब बाबर के लिए यह काम करना पड़ता है!'

बाबर में तेजी और चञ्चलता थी। राज ने कहा 'यह बहादुर है' और उन्होंने ही उसे 'बाबर' की उपाधि दी।

बाबर तेजी से बढ़ता गया। उसका कोट देखते-देखते छोटा होने लग। अब वह बँगले का चक्कर लगाने लगा। घर के सब लोगों को वह पहचानता था और हाते के सभी स्त्री-पुरुषों से वह परिचित हो गया। सभी के साथ वह तेजी से दुम हिलाकर मैत्री का परिचय देता था। मेरी उसकी मित्रता बढ़ती गई। रोज उससे देर तक मैं खेलता था और बातें करता था। सुबह उठते ही वह बड़े प्रेम से पास आकर तेजी से दुम हिला-हिलाकर मेरे पैरों को अपने शरीर से रगड़ता था। जब मैं उससे मिलता था तो मैं पुचकार कर उससे बातें करता था—'बाबर—कैसे

हो, तुम अब तक कहाँ थे, तुम बड़े सुन्दर हो।' बाबर अपनी प्रेमपूर्ण आँखों से मेरी ओर देखता। मैं सोचता कि इसमें वाक्शक्ति नहीं है—न मालूम यह क्या कहना चाहता है। राज मुझसे कहतीं कि 'आप तो उससे ऐसे बातें करते हैं, जैसे वह अच्छी तरह आपकी बातें समझता हो।' मैं यही उत्तर देता था कि 'यह मेरी बातें समझता है।' मैं जब बाहर से आता था, तो पहिले ही से बाबर मेरी प्रतीक्षा में रहता और हमेशा बड़े प्रेम से मेरा स्वागत करता था।

हमारे यहाँ सुबरन नाम की आया है। मेरे सभी बच्चों को उसने पाला है और छोटे बच्चे तो उसके आने के बाद ही हुए हैं। उसका घरवाला रामसुमेर अखबार बाँटने का काम करता है। यह परिवार भी हमारे हाते में रहता है। रामसुमेर ने भी एक काला कुत्ता पाल रखा था। उसका नाम कल्लू था। उसका ऊँचा कद था। बाबर और कल्लू में मैत्री हो गई और दोनों आपस में खेलने लगे। कल्लू के सामने बाबर बिल्कुल बच्चा था, लेकिन वह कल्लू से दबता नहीं था और कल्लू को काफी तङ्ग करता था। एक दिन छुट्टी के रोज मैंने दिन को देखा कि लान पर रामसुमेर ऊँघ रहा है और उसके पास ही बाबर और कल्लू एक दूसरे के ऊपर गुलटियाँ खा रहे हैं। एक दो बार लुढ़कते हुए वे रामसुमेर पर आ पड़े। रामसुमेर ने सोते-सोते अपने हाथ के झटके से उन्हें ढकेल दिया और वे फिर कुछ दूर जाकर अपनी क्रीड़ा करने लगे। मुझे यह दृश्य बड़ा आकर्षक लगा।

सरदी खतम हुई और हम सब बरामदे में सोने लगे। बाबर खुला रहता था। हमने सोचा कि उसे दिन को बाँध दिया करें, लेकिन राज ने कहा कि बच्चों का घर है, बाँधने से कुत्ता तेज हो जायगा और आते-जाते लोगों पर हमला करेगा। यही

सोच कर उसे शायद ही थोड़ी देर के लिए कभी बाँधा हो। बाबर अब बड़ा हो गया था और उसका उठान जारी था। उसकी आवाज भी दृढ़ हो गई थी। उसके भौंकने में गहरी ध्वनि निकलती थी। नया आगन्तुक उसकी शकल और भौंकने से कुछ समय के लिए अवश्य घबरा जाता था। लेकिन दिन में बाबर सिर्फ भौंकने से आगे नहीं बढ़ता था। उसमें इतनी समझ आ गई कि आनेवाले लोग परिचित और काम से आए होंगे। रात को वह मेरे पलँग के नीचे सोता था और चौकीदार के साथ हाते की भी गश्त लगाता था। सुबह रोज वह मेरे जगने की प्रतीक्षा करता था और जब तक मैं उसे प्यार-पुचकार न लूँ, उसे चैन नहीं आता था। अगर किसी दिन वह सुबह राज या बच्चों के साथ निकल गया, तो थोड़ी देर के बाद अवश्य ही मेरे पास आकर सुबह की मुलाकात करता।

हमने सोचा कि इसको कुछ सिखाएँ और शिक्षा दें, लेकिन उसे कुछ सीखना अच्छा नहीं लगा। वह मनमानी किया करता था। राज ने कहा कि 'यह ताल्लुकेदार का लड़का है। इसे शिक्षा की जरूरत नहीं है। यह खुद ही अपने मन की शिक्षा लेगा।' बच्चों के खेल में वह भाग लेता और गेंद के पीछे-पीछे दौड़ता। सारे घर में वह स्वतन्त्रता के साथ विचरता था। उसे जब शुरू में तखत या पलँग पर चढ़ने से रोका गया, तो उसे बुरा लगता था और आश्चर्य होता था कि उसे ऊपर चढ़ने से क्यों रोका जाता है। एक दिन सुबह मैंने देखा कि बाबर राजा की मसहरी में घुसा हुआ है। मैंने राजा को टोंका कि 'उसे अपने बिस्तर में क्यों घुसाते हो?' राजा ने कहा कि 'यह नही जाता।' जब मैंने उसे नीचे आने को कहा, तो वह गुर्राने लगा। मैंने डाँटकर उसे नीचे कर दिया। यह स्पष्ट था कि दस बरस के बालक राजा को बाबर ने अपनी गुर्राहट से डरा दिया था और

वह जबरदस्ती उसके पास घुस गया था, लेकिन शीघ्र ही बाबर समझ गया कि उसका स्थान अब बिस्तर पर या तखत पर नहीं है—वह नीचे ही बैठने लगा। यही हाल रसोई घर और खाने के कमरे के साथ था। बाबर अन्दर जाने की कोशिश नहीं करता था; लेकिन खाने के समय अगर परिवार के बाहर का कोई आ जाए, तो बाबर उसे भौंक कर भगाने की कोशिश करता था। वह खाने में किसी बाहरवाले को भाग देना पसन्द नहीं करता था। कल्लू से उसकी मैत्री थी—उसके साथ खेलता था, लेकिन खाने के समय वह कल्लू को भी भगा देता था। हम जब बाहर मेज पर खाते थे; तो वह बड़ी उत्सुकता से सबसे भोजन की प्रतीक्षा करता था। अपना रातिब तो खाता ही था, लेकिन और जो भी हम अपने खाने में से उसे दे दें, उसे बड़े चाव से खाता था।

अब बाबर इतना बढ़ गया था कि वह बच्चों की गोद का खिलौना नहीं रहा, उसकी आदतें भी धीरे-धीरे बदल रही थीं। पड़ोस के एक दो कुत्ते भी उसके मित्र हो गये थे, जिनके साथ अकसर उसकी भाग-दौड़ होती थी, लेकिन वह कभी हाते से बाहर नहीं जाता था। एक दिन राज को पास ही बाहर जाना पड़ा, बाबर भी साथ हो गया, लेकिन राज ने कहा कि 'थोड़ा चलने के बाद ही बाबर ने चलना मुश्किल कर दिया और रह-रह कर उसने यही संकेत किया कि वापिस घर चलो।' उसके बाद मैं बाबर को कभी-कभी अपने साथ घूमने ले जाने लगा और वह बड़े चाव से जाता था। मुझसे आगे चलता था और थोड़ी देर के बाद घूम कर मुझे देख लेता था। मैं भी जब घर में रहता, तो थोड़ी-थोड़ी देर के बाद बाबर को याद करता और जब भी मुझसे आगे चलता था और थोड़ी देर के बाद घूम कर यह देख लेता था कि मैं आ रहा हूँ कि नहीं। अब वह मेरे

साथ अधिक रहने लगा। मैं भी जब घर में रहता, तो थोड़ी-थोड़ी देर के बाद बाबर को याद करता और जब भी मुझसे मिले उसे देर हो जाती, तो वह आकर दुम हिला-हिला कर अपना प्रेम की प्यास बुझाता। हम लोग जब भी शाम-सबेरे घर से बाहर जाते, तो वापसी पर वह ताक में रहता और हमारे आते ही एक एक से ऐसे प्रेम से मिलता, जैसे बहुत दिनों के बाद मिल रहे हैं।

गरमी आ गई थी। तीसरे चौथे दिन मैं और राज उसे पकड़ कर नहलाते। नहाने में ज़ान करके वह शरारत करता था। उसको पता चल जाता था कि मुझे नहलाने की तैयारी है—वह इधर-उधर भागता और मुश्किल से पकड़ में आता। लेकिन एक दफ़े जब उसके गले में ज़ञ्जीर पड़ जाती, तो फिर चुपचाप नहा लेता था। मैं उसे एक दो बार गङ्गा जी भी ले गया, नहाना तो उसे अच्छा लगा, लेकिन नदी के आकार से डर कर वह जल्दी ही पानी से निकल पड़ा।

उसे दिखा-दिखाकर चीजें उठाकर भागना अच्छा लगता था और अक्सर यह तमाशा करता था। कभी जूता उठा लिया और कभी मोजा और उस वस्तु को दिखाने आए। जब उसे टोका, तो उस चीज को लेकर भागे। फिर लेकर आ गए और देख रहे हैं कि कब छीनने आते हैं। जब फिर उसे पास आकर टोका, तो फिर भागा। अगर कभी उसका पीछा नहीं हुआ तो उसे बुरा लगता था कि उसका खेल बिगाड़ा जा रहा है।

बाबर की क्रीड़ाएँ इसी तरह चलती रहीं। मई का महीना आ गया। स्कूल बन्द हुए और हमारा परिवार पचमढ़ी जाने को तैयार हुआ। मेरे पिता जी वहीं थे। राज और मेरी दो छोटी लड़कियाँ, राजलक्ष्मी और दामिनी और राजा पचमढ़ी जा रहे

थे। मेरे दो बड़े लड़के राजगोपाल और वाल्मीकि वहाँ पहिले ही चले गए थे। मुझे वहाँ कुछ देर से पहुँचना था। यह समस्या आई कि बाबर को साथ ले जाया जाए या छोड़ा जाय। राज ने यही निश्चय किया कि बाबर उनके साथ जायेगा। उन्होंने कहा कि 'यह बराबर साथ रहा है। इसे कैसे अलग करूँगी! यह अकेला कैसे रहेगा?' मैंने भी इस राय में योग दिया। बच्चे तो यह चाहते ही थे।

शाम की गाड़ी से राज और बच्चे पचमढ़ी जा रहे थे। मैं बाबर को लेकर स्टेशन गया। यह स्टेशन जाने का बाबर के लिये पहिला अवसर था। प्लेटफ़ार्म की भीड़ और गुलशोर ने उसको उत्तेजित कर दिया, मुझे उसे सँभालना काफ़ी मुश्किल हो गया। वह बड़ा और बलवान हो गया था। उसे जञ्जीर से मैं पकड़े हुए था और वह मुझे बार-बार घसीटने की चेष्टा करता था। बड़ी मुश्किल से उसे एक जगह खड़ा किया। गाड़ी आई और संयोग से एक कम्पार्टमेंट करीब-करीब ख़ाली मिला। बाबर को भी अन्दर प्रवेश कराया गया। अपने साथ-साथ राज और राजा तथा राजलक्ष्मी और दामिनी (मेरी लड़कियों) को देखकर उसे सान्त्वना हुई। प्लेटफ़ार्म के तरफ़ की बर्थ पर सभी बैठे हुए थे। मैं बाहर खड़ा हुआ था। इतने में बाबर भी राजलक्ष्मी और दामिनी के बीच में आकर बैठ गया। राजलक्ष्मी ने उसे धक्का देकर अपने से कुछ अलग करने की चेष्टा की। इस पर वह दामिनी के निकटतर गया। दामिनी बोली—'अम्मा जी, देखिये बाबर मेरे ऊपर चढ़े जा रहा है।' राज ने बाबर को अपने पास बुला लिया। मैं बाहर से खड़ा-खड़ा सबको अन्दर कम्पार्टमेंट में बाबर सहित एक क़तार में बैठे हुए देख रहा था। मुझे कुछ यह भी चिन्ता थी कि रास्ते में बाबर शरारत न करे, जिससे और यात्रियों को असुविधा हो, गाड़ी रवाना हुई,

मैं वापिस घर आया। दूसरे दिन तार आ गया कि सब कुशलता-पूर्वक पचमढ़ी पहुँच गये।

(२)

३० मई को मैं भी पचमढ़ी के लिये रवाना हुआ, मेरा भतीजा और दो भतीजियाँ मेरे साथ थीं। सुबह हम पिपरिया पहुँचे और वहाँ से मोटर पर चल कर डेढ़ घन्टे में पचमढ़ी पहुँच गए। पचमढ़ी आने का मेरे लिये पहिला अवसर था। महादेव पर्वतमाला में यह सुन्दर स्थान है। ३००० फुट की ऊँचाई पर कमोवेश समतल भूमि पर पचमढ़ी की आबादी है। मई में वहाँ इतनी ठंडक नहीं थी कि गरमी के कपड़े बदलने पड़ें। पहाड़ के ऊपर पहुँच कर दिन के नौ बजे इतनी ही ठण्डक थी, जो अच्छी तरह बिना ऊनी कपड़े पहने सहन की जा सके। मुख्य मन्त्री के निवास स्थान 'चम्पक' में हम ठहरे थे। वहाँ पहुँचते ही जिन्होंने मेरा स्वागत किया, उनमें प्रमुख बाबर ही था। वह बड़े प्रेम से मुझसे मिला और मेरे पहुँचने के घण्टों बाद तक बराबर मेरे साथ ही रहा। मेरे बड़े लड़के राजगोपाल और उससे छोटा वाल्मीकि पचमढ़ी से जावरा चले गए थे। राज ने बताया कि बाबर पचमढ़ी आकर खूब घूमता है और सबके साथ बराबर घूमने जाता है। उसे मोटर पर भी घूमने में आनन्द आने लगा था और यदि कभी उसे साथ न ले जाया जाय, तो उसे बहुत बुरा लगता था। वाल्मीकि तो उसे बराबर लम्बी-लम्बी पैदल सैर में अपने साथ-साथ रखता था और दोनों रोज मीलों साथ टहलने जाते थे।

'डचेज़ फ़ाल' जाने के लिये काफी नीचे उतरना पड़ता है और नीचे जाकर उस रमणीक स्थान पर पहुँचते हैं, जहाँ बहुत ऊँचाई से पानी गिरता है। वहाँ राज और सब बच्चे बाबर

सहित गए थे। बाबर तो राजगोपाल, वाल्मीकि और राजा के साथ नीचे पहुँच गया लेकिन राज बीच ही में बैठ गई। राजलक्ष्मी और दामिनी ने हिम्मत नहीं हारी और वे आगे बढ़ीं, लेकिन प्यास के मारे दोनों लड़कियाँ घबरा गईं। राजलक्ष्मी को तो चक्कर आने लगा। उन्होंने देखा कि दूर पर भाई वापिस ऊपर आ रहे हैं। दामिनी ने चिल्ला कर भाइयों से कहा, 'अगर बहिनों का ख्याल है, तो ईश्वर के लिये पानी ला दो—अगर लोटा-गिलास न हो, तो गीला करके अँगोछा ही ले आओ। हम उसे निचोड़ कर पी लेंगे।' वाल्मीकि ने लड़कियों की स्थिति को न समझते हुए कहा, 'ऊपर खड़ी-खड़ी क्या चिल्ला रही हो, नीचे क्यों नहीं आतीं ?'

'आएँ कैसे—हमारे पैर ही नहीं उठते', यह वार्तालाप हो ही रहा था कि राज ने ऊपर से कहा कि 'पानी आ रहा है।' सब थक गये थे, लेकिन बाबर बड़ी सरलता से नीचे गया और फिर ऊपर आ गया।

मैं भी बाबर को अपने साथ ले जाने लगा। वह पहाड़ और जङ्गल में मस्ती के साथ चलता था। जहाँ कोई गाय भैंस देखी, तो बेतहाशा उसके पास लपकता था। अगर वह इससे डरी; तो यह उसे खदेड़ता था, लेकिन अक्सर जैसे ही भैंस ने अपने सींग बाबर की तरफ किये, तो बाबर फ़ौरन पीछे भागता था। सघन भूमि पर वह दूर निकल जाता था और फिर-फिर कर देखता था कि मैं आ रहा हूँ कि नहीं।

हम सब जटाशङ्कर गए। पर्वत की दीवारों के गर्भ में यह अत्यन्त रमणीक स्थान है, बाबर भी साथ था। हमने कुण्ड में नहाया और बाबर ने तो इस प्रसन्नता से वहाँ ग़ोते लगाये कि ज़बरदस्ती उसे कुण्ड के बाहर निकाल कर ज़ञ्जीर से बाँधना

पड़ा। मेरी चाची भी साथ थीं। वे आचार-विचार का पालन बड़ी कठोरता से करती हैं। वे मुझसे रुष्ट हो गईं। उन्होंने कहा—'शिव जी, तुम तो सब जगह भरभण्ड करते हो। कुत्ते ने कुण्ड में नहाया है—अब मैं कैसे नहाऊँ—मैं नहीं नहाती।'

मैंने कहा—'चाची, यह बहता हुआ पानी है, ऊपर झरने से पानी गिर रहा है, आप ऊपर झरने के पास नहाएँ—वहाँ का पानी अशुद्ध थोड़े हुआ है।'

लेकिन चाची नहीं मानीं और बिना नहाए ही वापिस आ गईं।

बाबर ने 'बड़े महादेव' की यात्रा भी हमारे साथ की! बाबर मेरे साथ-साथ पैदल गया था। वहाँ के कुण्ड में मैं उसे अन्दर नहीं ले गया। चाची भी साथ थीं। वे ही आपत्ति करतीं। लेकिन बाबर ने गुफा के बाहर ही से भगवान् चन्द्रशेखर के दर्शन किये।

बाबर का कद इधर एक महीने में काफी बढ़ गया था और उसके शरीर का गठन दौड़ के लिये बहुत उपयुक्त था। मेरा अनुमान है कि कुत्तों की दौड़ में वह आगे ही रहता। 'चम्पक' के सामने के लान पर कभी वह अपनी दौड़ का तमाशा दिखाता था। वह कोई चीज, मोजा या कपड़े का टुकड़ा उठा लेता और अपनी मूक भाषा में कहता कि इसे मुझसे छीनो। वह उसे लेकर दौड़ता और फिर रुक रुक कर देखता कि मेरे पीछे आ रहे हैं या नहीं। या खुद पास आ जाता और जब मैं उस कपड़े के टुकड़े को लेने बढ़ता तो वह उसे उठाकर बड़े वेग से भागता।

'चम्पक' के लान की दाहिने तरफ आम का एक विशाल वृक्ष है। उसके नीचे दो कबरें हैं। एक कबर के ऊपर अँग्रेजी भाषा में लिखा है :—

डिक
दि बेस्ट आफ़ डाग
एण्ड
दि बेस्ट आफ़ फ्रेण्ड
डाइड १९१४

इसी प्रकार से दूसरी क़बर पर दूसरे कुत्ते का नाम है और उसकी मृत्यु का साल (शायद १९१८) अङ्कित है। 'चम्पक' सरकारी निवास-स्थान रहा है—यहाँ पहिले अँगरेज़ अफ़सर रहते थे। ये कुत्ते भी उन्हीं अँगरेज़ अफ़सरों के थे। मैंने उन क़बरों को दिलचस्पी से देखा और मुझे आभास हुआ कि कुत्ते का प्रेम भी मनुष्य के जीवन को रस दे सकता है।

पचमढ़ी में बाबर के जीवन का सबसे उत्तम काल बीता। वहाँ उसने पूर्ण स्वस्थता के साथ वन, वृक्षों और जलाशयों में क्रीड़ाएँ कीं। हमारे साथ वह 'फ़ेयरी पूल' गया और जिस तरह उसने राजा के साथ वहाँ के जलाशय में उन्मत्त होकर डुबकियाँ लगाईं, उसका दृश्य आज भी कभी-कभी मेरे सामने आ जाता है।

[३]

१८ या १३ जून को हम सब पचमढ़ी से मोटरों द्वारा भोपाल के लिए रवाना हुए, हम सब मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री के साथ यात्रा कर रहे थे। बाबर को मैंने अपने साथ मोटर पर

बिठाया। रास्ते भर उसने मुझे सताया। कभी नीचे बैठे, कभी ऊपर आकर बाहर मुँह निकाल कर झाँके। हम लोग शाम को पाँच बजे हाशंगाबाद के सरकेट हाउस में पहुँचे। उस समय गर्मी काफी थी। होशंगाबाद का सरकेट हाउस नर्मदा के तट पर स्थित है। हम लोगों ने नर्मदा-स्नान की तय्यारी की। बाबर भी साथ-साथ था। मैंने उसे पकड़ कर नहलाया। किनारे पर भी पानी गहरा था। बाबर को अपनी भी चिन्ता थी और हम लोगों की भी। वह शीघ्र ही पानी के बाहर आ गया। राजा नहा रहा था। बाबर बार-बार भौंक-भौंक कर राजा को संकेत करता था कि पानी के बाहर आ जाओ। जब राजा घाट की सीढ़ियों के पास आता था, तो बाबर उसे पकड़ कर बाहर घसीटने की चेष्टा करता था। नहा कर हम सब ऊपर आए और जलपान करके भोपाल के लिए रवाना हो गए और वहाँ रात्रि के दस बजे पहुँचे।

भोपाल आकर बाबर के पैर में तकलीफ हो गई। पचमढ़ी के जंगलों में दौड़ने-फिरने से उसके पैर के तलुए चटख गए थे और उसके कारण उसे चलने में तकलीफ होती थी। उसके लिए उसका इलाज भी हुआ। हम लोगों को कुछ दिनों के लिए जावरा जाना था। बाबर के लिए यही निश्चय हुआ कि उसे भोपाल में छोड़ा जाए और सुबरन आया और सुबरन के नवासे मन्नू को भी उसके पास रखा जाए, जिससे बाबर अकेला न रहे। आठ दिन के लिए हमारा परिवार जावरा चला गया, लेकिन बाबर की तरफ सबका ध्यान था कि वह भोपाल में हमारी प्रतीक्षा करता होगा। जावरा में मेरा समय चिन्ता ही में बीता। मेरी बड़ी लड़की विलास अपने पति के पास मथुरा में थी और उसकी तबियत ठीक नहीं थी। मैंने तार भी दिए, लेकिन उस समय तार-विभाग में हड़ताल चल रही थी। इससे तार का

कोई उत्तर नहीं आया। जावरा से आठ दिन के बाद हम लोग वापिस भोपाल आए। जैसे ही घर पहुँचे, तो सबसे पहिले बाबर ही दौड़ा हुआ आया, जैसे वह हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। एक-एक से वह लिपट-लिपट करके मिला। किसी के कपड़े पकड़े। किसी की टाँगों से चिपटा—किसी के पैर चाटे। कभी एक के पास जाए, फिर दूसरे के पास। मेरे पिता के सरकारी जमादार ठाकुर शिवप्रताप सिह से भी बाबर का स्नेह हो गया था। ठाकुर साहब ने कहा कि हमारे जाने के बाद बाबर की तबियत भी खराब रही और एक-दो बार उसे जानवरों के अस्पताल में इलाज के लिए ले जाना पड़ा। बाबर की टाँग अब ठीक हो गई थी और मैं उसे अपने साथ चहलकदमी में बाहर ले जाया करता था।

जावरा से वापिस आने पर मैं आठ दिन भोपाल रहा। जून का महीना खतम हुआ था और मुझे वापिस इलाहाबाद जाना था। राज और बच्चों को इलाहाबाद जाने की इतनी जल्दी नहीं थी। मैंने सोचा कि बाबर को अपने साथ ही ले चलूँ। नहीं तो राज को इसे अपने साथ लाने में कष्ट होगा। गाड़ी में उसे साथ रखने का स्थान मिले या न मिले। यही सब सोच कर मैं बाबर को साथ लेकर इलाहाबाद के लिए रवाना हुआ। रास्ते में जो घटना घटी, उसका वर्णन उस पत्र में था, जो इलाहाबाद पहुँचकर मैंने बच्चों को भेजा। पत्र नीचे उद्धृत करता हूँ :—

१६ एडमान्स्टन रोड
इलाहाबाद
५—७—५७

प्यारी दम्मो, बीबी और प्यारे राजा,

मैं यहाँ ३ की सुबह पहुँचा, रास्ते में बाबर की वजह से बड़े चक्कर में पड़ा। भोपाल में उसे ब्रेक वान में बन्द किया था। इटारसी पर उसे उतारा, तो वह बहुत परेशान था—मुझसे बहुत चिमटा और मेरी शेरवानी और ग़रारा गन्दा कर दिया—मैंने शोर्ट और बुश शर्ट पहनी। इटारसी पर मैंने उसे दूध और एक डबल रोटी खिलाई थी। इटारसी पर मेल में उसे फिर गार्ड के डिब्बे में बन्द किया—हम लोग अलग कम्पार्टमेन्ट में थे। साथ में एक एयरफ़ोर्स का अफ़सर और उसकी बीबी थी—जबलपुर स्टेशन पर मैंने रोटी और सालन लिया और उसे लेकर बाबर के डिब्बे में गया। वहाँ देखता हूँ, तो बाबर ग़ायब—गार्ड ने कहा कि निकल कर भाग गया। गले में चेन थी। मैंने दूसरी तरफ़ जो देखा, तो दूर भागते हुए उस पर नज़र पड़ी—मैं भी लाइनों को लाँघता हुआ उसके पीछे दौड़ा, लेकिन वह बहुत आगे निकल गया था। मेरी आवाज़ उसने नहीं सुनी। तब मैं भागता हुआ फिर अपनी गाड़ी पर आया—गाड़ी चलनेवाली थी। मैंने डिम्पी और टिन्की के टिकट एयर फ़ोर्स के अफ़सर को दिए और बच्चों को उन्हें देखने के लिए कहा और मैं जबलपुर में ठहर गया—गाड़ी और मेरा सारा सामान चला गया। मैं रेलवे पुलिस के द़फ्तर गया और वहाँ पुलिसवाले से कहा और सिटी डिप्टी एस० पी० को टेलीफ़ोन करके ख़ुद ही रिक्शे पर बाबर को ढूँढ़ने निकला—तीन-चार फ़र्लांङ्ग जाने पर एक रिक्शावाला मिला। उसने कहा कि उसने कुत्ते को दूसरी तरफ़ देखा है—मैं लौटा। एक मैदान मिला। वहाँ से मैंने बाबर को दूसरी तरफ़ भागते देखा—बेचारा ज़मीन को सूँघ-सूँघ कर भाग रहा था। मैंने दूर ही से आवाज़ दी—वह रुका और फिर मेरी आवाज़ पहचान कर बेतहाशा मेरी ओर दौड़ा। मेरे पास

आकर मुझसे लिपट गया और चुपचाप रिक्शे पर चिमट कर बैठ गया, मैं वापिस स्टेशन पहुँचा—उसके बाद मैं वेटिंग रूम में गया और उसे खाना खिलाया। फिर उसे अच्छा ही नहीं लगता था कि मैं उसकी नजर से दूर होऊँ—मैंने इलाहाबाद रेलवेवालों से तार दिलवाया कि बच्चों को अच्छी तरह से उतार लें। मैं स्टेशन से सिटी डिप्टी एस० पी० के घर आया—बाबर की बड़ी खातिर हुई। रात को एक खाली कम्पार्टमेन्ट मिला। उसमें मैं और बाबर आए। रात भर चुपचाप बाबर डिब्बे में बैठा रहा—कुछ कूद-फाँद नहीं की। बच्चे खैरियत से इलाहाबाद पहुँच गए थे। ब्रह्मा भी स्टेशन पर आया था, मैं ३ की सुबह को इलाहाबाद पहुँचा—बाबर अच्छा है, लेकिन तुम लोगों को—खास कर राजा को याद करता है। मेरे कमरे के सामने बैठ कर फाटक पर नजर रखता है, जैसे तुम लोगों का इन्तजार करता है—अब उसे सारी पुरानी बातें याद आ गई हैं। कल दिन को पहिले की तरह तखत के नीचे सोया। कल रात को बब्बू भैय्या भी यहाँ आ गए। यहाँ सख्त गर्मी है—बादल आते हैं मगर पानी नहीं बरसा है। बाकी खैरियत है—

सबको प्यार—खत भेजना।

शुभं

पापाजी

(४)

२ जुलाई को मैं इलाहाबाद पहुँचा, मेरे पहुँचने के चार दिन के बाद ही मेरे दोनों बड़े लड़के राजगोपाल और वाल्मीकि भी आ गए। इलाहाबाद आकर बाबर अपने परिचित स्थान में आ गया था। लड़कों के आने से उसका

अकेलापन कुछ दूर हुआ। उसका मित्र कल्लू तो था ही। इधर दो महीने में बाबर कल्लू से बहुत बढ़ गया था और उसके सामने कल्लू छोटा लगता था। कल्लू के साथ भी वह खेलता था, लेकिन जब तक मैं घर में रहता, तो बाबर का अधिक समय मेरे साथ ही बीतता था। १० जून को वाल्मीकि खड़कवासला चला गया। मैं और राजगोपाल ही घर में रह गए। लेकिन मैं बाबर के लिए काफी था और हमारी मैत्री और घनिष्ट हो गई। जुलाई के तीसरे सप्ताह में राज और बच्चे भी भोपाल से आ गये। उनके आने के बाद बाबर अकेलेपन की चिन्ता से बिलकुल मुक्त हो गया। उसकी दिनचर्या अब निश्चित सी हो गई थी। प्रातःकाल वह घन्टे भर राज के साथ रहता था। फिर वह मेरे कमरे में आ जाता था। मेरे साथ मेरे दफ्तर के कमरे में जाता था और जब तक मैं कचहरी नहीं जाता था, वह मुझे नहीं छोड़ता था। फिर दिन भर वह राज के साथ रहता था। जैसे ही मैं कचहरी से आता था, वह लपक कर मोटर से उतरने के पहिले ही दुम हिला-हिला कर बड़े प्रेम से मेरा अभिनन्दन करता था और फिर काफी समय तक मेरे साथ रहता था। हम जब खाना खाते थे, तो उस समय वह अपने आपको परिवार का अङ्ग समझता था और उस समय यदि कोई बाहर का आदमी आ जाए, तो उसके लिए उसका आगमन असहनीय होता था और उस पर वह क्रोध से गुर्राता था। खाते समय वह सबसे अपना भाग भौंक भौंक कर माँगता था और जब तक सब उसे कुछ न कुछ न दे लेते थे, उसे संतोष नहीं होता था। राज बराबर कहती थीं कि इसे नमक मत दीजिये। नमक से इसको खुजली हो जायेगी, लेकिन मेरे लिए बाबर से नहीं कहना कठिन था। रात्रि में बाबर चौकीदार के साथ गश्त लगाता था और फिर मेरे पलँग के नीचे ही लेटता था। सुबह उसका क्रम

था कि मुझे जगाए और दुम हिला-हिला करके अपने शरीर को मेरी टाँगों से रगड़े। मेरे जगने के बाद वह राज के साथ हो जाता था।

अगस्त-सितम्बर की उमस और गरमी ने बाबर को बहुत सताया। वह दिन में ठन्डे स्थान ढूँढ़ता था। कभी तखत के नीचे घुस जाता था और वहीं घन्टों पड़ा रहता था। मेरे गुसलखाने के एक कोने में गरमी के समय को काटता था। जैसा राज ने कहा था, बाबर को खुजली हो गई। अधिक नहीं थी, लेकिन उसे उलझाने के लिए काफी थी—इससे वह अन्धेरे स्थानों में घुस जाता था, जहाँ उसे मक्खियाँ न सताएँ। गन्धक लगाने और खिलाने से उसकी खुजली तो दूर हो गई, लेकिन उसके फलस्वरूप उसे मक्खियों से चिढ़ हो गई। जहाँ एक भी मक्खी उसे दिखी, तो वह उससे लड़ने लगता था, परन्तु स्वयं शीघ्र ही परास्त होकर अन्धेरी जगह भागता। अब उसका शरीर लम्बा-चौड़ा हो गया था और उसके लिए तखत के नीचे घुसना भी कष्टदायक था। मेरे कमरे में मेज के नीचे अपना बैठने लेटने का स्थान बनाया था और अकसर जब कमरे में आता, तो वह वहीं बैठता था।

पड़ोसियों के कुत्तों से बाबर की कोई विशेष मैत्री नहीं थी। कभी-कभी एक-दो कुत्ते उससे मिलने आ जाते थे और उनके साथ कुछ समय के लिए उसकी दौड़-भाग हो जाती थी। उसका सजातीय परम मित्र कल्लू ही था और दोनों को आपस में गाढ़ा प्रेम था। बाबर और कल्लू से अकसर नोंक-झोंक और दौड़ भाग रहती थी। अपने खाने के कुछ भाग को अकसर बाबर अपने मित्र कल्लू के लिए छोड़ देता था। दोनों आपस में

लड़ते थे—एक दूसरे पर भौंकते थे, लेकिन बिना साथ खेले दोनों को चैन भी नहीं आता था। राज को बाबर के विवाह की चिन्ता हुई। उनका कहना था कि यदि इसकी जीवन-सहचरी आ गई, तो फिर यह इधर-उधर नहीं भटकेगा और उसके जीवन में सूनापन नहीं रहेगा। बात ठीक थी। मैं भी इस राय से सहमत था। बच्चों ने भी अपने साथियों से कहा कि एक एल्सेशियन कुतिया के बच्चे की आवश्यकता है। मैंने भी अपने मित्रों से इस आवश्यकता की चर्चा की। बाबर से मैं बातें करता था। जब बाहर से आता, तो उससे उसका हाल पूछता; 'तुम कहाँ थे—क्या करते थे?' वह इन बातों का उत्तर अपनी दुम के कम्पन और नेत्रों की चितवन से ही देता था। मैंने बाबर से कहा कि 'तुम्हारे विवाह की चिन्ता है—तुम्हारे योग्य तुम्हारी जीवन-संगिनी मिल जाए तो तुम प्रसन्नता से अपना जीवन व्यतीत करोगे।' इसके उत्तर में बाबर टुकर-टुकर मेरी तरफ़ गंभीर मुद्रा से देखता।

वर्षा का समय बीता—दिवाली आई और चली गई और शरद् ऋतु ने अपना राज्य स्थापित किया। सरदी अभी कठोर नहीं हुई थी। मैं बरान्डे ही में सोता था। एक दिन मैं प्रातःकाल उठा। नित्य की तरह बाबर ने उत्सुकता से मेरा अभिनन्दन नहीं किया, मैंने इधर-उधर देखा—बाबर पर नज़र गई। वह दीवार से लगा हुआ मेरे पलंग के पास लेटा था। मैंने पुकारा—'बाबर-बाबर'! बाबर ने कराहते हुए उठने की चेष्टा की, लेकिन लड़खड़ा के फिर बैठ गया और मेरी ओर देखने लगा। मैं उसके पास गया। उसे पुचकारा और सहारा देकर उसे उठाया। तब मालूम हुआ कि उसकी टाँग के जोड़ के पास गहरी चोट लगी है। सारी टाँग सूजी हुई है। न मालूम रात्रि

में कब उसे चोट लगी—वह चोट खाकर किसी तरह से मेरे पलँग के पास आकर लेट गया और अपने कष्ट को दबाकर चुपचाप पड़ा रहा। वह मेरे जगने की प्रतीक्षा में था। मैंने उसे पुचकारा और सहारा देकर उसे अपने कमरे में ले गया। राज ने हल्दी-चूना लगा कर पट्टी बाँधी। मुझे यह जान कर संतोष हुआ कि उसकी हड्डी नहीं टूटी थी, परन्तु चोट गहरी थी। या तो किसी ने उसे लाठी से मारा था या किसी बड़े ईंट-पत्थर के टुकड़े से उसे चोट आई थी। चौकीदार ने कहा कि वह रात उसके साथ बँगले में घूमा था। यह पता नहीं चला कि कब और किसने उसे मारा। हल्दी-चूने की सेंक से उसकी चोट ठीक नहीं हुई। मैं उसे तीन-चार दिन के बाद अस्पताल ले गया। वहाँ पिचकारी से उसकी चोट के पास का जमा हुआ खून निकाला गया और उससे उसे आराम होने लगा।

टाँग की चोट ने बाबर को लगभग तीन हफ़्ते लँगड़ा रखा। मैंने एक दिन राज से कहा कि 'बेचारे बाबर के भोपाल पहुँचने और उसके बाद से कुछ न कुछ चलता ही जा रहा है। क्या यह मेरे कष्ट अपने ऊपर ले रहा है।' मैंने हँसते हुए कहा कि 'मुझे शनि की साढ़े साती चल रही है—उसके अभी तीन-चार महीने बाकी हैं। कौन जाने, यह मेरे ऊपर आनेवाली आपत्तियों को अपने ऊपर लेकर उन्हें खुद झेल रहा है।' राज ने सुन लिया—चुप रहीं। मेरे घनिष्ठ मित्र पं० पद्मकान्त मालवीय ने अपने घर के बाहर एक काली कुतिया बाँध रखी थी। उन्होंने एक बार मेरे पूछने पर कहा था कि 'यह आपदा बचाती है।' उन्हीं दिनों मालवीय जी मुझसे मिलने आए। बाबर मेरे कमरे में मेज़ के नीचे लेटा था। मैंने उन्हें बाबर की पीड़ा की गाथा सुनाई और उनसे भी वही बात कही, जो राज

से कही थी। उन्होंने कहा—'ठीक कहते हो। यह तुम्हारी पीड़ाएँ अपने ऊपर ले रहा है। यह मर जाएगा।' उनके ये वाक्य मुझे बहुत बुरे लगे। मैंने कहा—'मेरे प्यारे कुत्ते को क्यों कोसते हो!' पद्मकान्त ने मेरी बात सुनी, लेकिन अपने शब्द वापिस नहीं लिए।

थोड़े दिनों के बाद बाबर की टाँग ठीक हो गई और वह अपनी पुरानी दिनचर्या पर आ गया। भोपाल से आने और जबलपुर की घटना के बाद मेरा और बाबर का सम्बन्ध और गहरा हो गया था। वह घर में ज़्यादातर मेरे पास ही रहता था और मैं भी जब उसे नहीं देखता, तो उसको बुलाता था। उसे भी जब तक मैं दिन में पाँच-छः बार पुचकार न लूँ और उसके शरीर को सहला न लूँ तब तक चैन नहीं आता था। वह शरीर से बड़ा हो गया था। बाहरवाले उसके रूप को देखकर घबराते थे, लेकिन उसका बाल्यपन नहीं गया था। कभी-कभी वह तरंग में मेरी चीजें उठाकर चल देता था और यह आशा करता था कि मैं उसके पीछे दौड़ूँ। वह मनमौजी भी था और अक्सर जब अपनी लहर में होता, तो किसी की नहीं सुनता था। बार-बार पुकारने पर भी कोई ध्यान नहीं देता था।

नवम्बर का महीना था। एक दिन मैं जब कचहरी से वापिस आया तो राज ने मुझे देखते ही खबर सुनाई कि 'कल्लू मर गया।'

मैंने चौंक कर पूछा—कैसे ?

उन्होंने कहा—दिन को किसी बाहर के आदमी ने खबर दी कि चौरास्ते पर एक कुत्ता किसी मोटर ट्रक से कुचल कर मर

गया और सड़क पर पड़ा है। रामसुमेर जब वहाँ पहुँचा तो उसने देखा कि उसी का कल्लू मरा पड़ा है।

राज ने फिर कुछ हँसते हुए कहा—दिन को मैं लेटी हुई थी—इतने में सुबरन आया रोती हुई मेरे पास आई। मैं उसे देखकर घबराई कि इसे क्या हुआ। उसने रोते-रोते बताया कि कल्लू मर गया। जब मैंने यह सुना तो मुझे शान्ति मिली—मैं मन में हँसी। उसे रोते देखकर मैं पहिले यही समझी कि इसके घर में कोई आफत आ गई।

कल्लू को रामसुमेर ने गङ्गा जी में प्रवाह कर दिया। दो तीन दिन के बाद राज ने मुझसे कहा कि 'आया को कल्लू के मर जाने का दुःख है लेकिन उससे ज्यादा रामसुमेर को है। वह कहती थी कि रामसुमेर बड़ा उदास रहता है। मैंने उसे ढाढ़स देकर कहा कि दूसरा कुत्ता आ जायगा, तो वह कहता है कि दूसरा कुत्ता भले ही आए, लेकिन कल्लू तो नहीं आएगा।'

मैं नहीं कह सकता कि बाबर को कल्लू का चला जाना कैसा लगा। उसका एक ही सजातीय बचपन का साथी था। वह भी उसे छोड़कर चला गया।

(६)

दिसम्बर का महीना शुरू हो गया। बाबर को सर्दी लग गई, मैं समझता था कि चार-पाँच दिन में उसका यह कष्ट दूर हो जायगा लेकिन उसका रोग और अधिक बढ़ गया—उसकी नाक से खून आने लगा। मैं उसे जानवरों के अस्पताल ले गया। डाक्टर ने देखकर कहा कि 'इसे तेज बुखार है और इसके दोनों फेफड़े जकड़ गए हैं।' उसे इन्जेक्शन लगाए गए, दवाई दी गई और कई दिन तक बराबर इन्जेक्शन लगाने को कहा गया। एक दिन छोड़ कर इन्जेक्शन लगाने थे। अब मैंने उसे रात को कमरे

के अन्दर सुलाने का प्रबन्ध किया। अपने सोने के कमरे में एक तरफ एक दरी के टुकड़े पर एक पुराने कालीन का टुकड़ा बिछा-कर उसके सोने को जगह बनाई गई। रात को मैं उसे अपने साथ ही अपने बैठने के कमरे से अपने सोने के कमरे में ले जाता था।

दूसरी बार जब उसे इन्जेक्शन लगवाना था, तो मैंने बाबर को मङ्गली मोटर ड्राइवर के साथ अस्पताल भिजवाया। जब कचहरी से वापसी पर मैंने मङ्गली से बाबर का हाल पूछा, तो उसने कहा कि वह बाबर को अस्पताल ले गया था, लेकिन वहाँ पहुँच कर उसने ऐसा उग्र रूप धारण किया कि किसी को उसे छूने की भी हिम्मत नहीं पड़ी और मङ्गली उसे बिना इन्जेक्शन लगवाए वापिस आ गया। दूसरे दिन मैं खुद बाबर को अस्पताल ले गया। वहाँ मेरे साथ वह शान्त रहा और चुपचाप इन्जेक्शन लगवा लिया। दस बारह दिन तक बाबर का इलाज चलता रहा और वह ठीक होने लगा। अब उसकी नाक से खून आना बन्द हो गया था, लेकिन उसे न मालूम क्या सूझती थी कि वह रोज रात को छत पर चढ़ जाता था—वहाँ करबी का ढेर था। उसी के पास वह सर्दी की रातों में बैठता था। प्रायः रोज ही अपने कमरे से सोने के कमरे जाते समय मुझे उसे पुकारना पड़ता था और मेरे बुलाने पर वह नीचे उतर कर सोने के कमरे में जाता था। सुबह मुझे जगा कर वह कमरे के बाहर निकल जाता था और कुछ समय राज के साथ रहकर वह बाग में जाकर बैठता था। मुझे कई बार उसके छत पर बैठने से खयाल आया कि इसे फिर तकलीफ न हो जाए।

इन्हीं दिनों में वाल्मीकि खड़कवासला से सर्दियों की छुट्टियों में तीन हफ्ते के लिए घर आया। जुलाई के बाद वह

दिसम्बर में घर आया था, लेकिन बाबर उसे देखते ही उससे चिमट गया और बड़ी देर तक उससे खेलता रहा। लेकिन अब बाबर में पहिले जैसी फुर्ती नहीं रही। अक्सर वह अपना खाना आधा पौन खाकर छोड़ देता था। उसकी चाल भी मन्द हो गई थी—कभी-कभी गरदन आगे करके चलते-चलते खड़ा होकर सुस्ताने लगता। मैंने यही अनुमान किया कि अभी इसकी तबियत बिल्कुल साफ नहीं हुई है और वह थोड़े दिनों में ठीक हो जाएगा।

बाबर के लिए एक सहचरी की बहुत दिनों से तलाश थी। मेरी लड़की दामिनी अपने स्कूल की एक सहेली के यहाँ से एक एलसेशियन कुतिया लाई। उसका नाम जिनी था। २५ दिसम्बर को जिनी हमारे घर आई। उसकी उम्र लगभग एक महीने की होगी। आते ही वह घर से और परिवार के सब लोगों से ऐसी परिचित हो गई, जैसे इसी घर में उसका जन्म हुआ हो। वह बच्चों के लिए खिलौना बन गई और सब उसी की तरफ़ आकर्षित हो गए। उसने बाबर से भी प्रेम करने की चेष्टा की, लेकिन बाबर उसकी ओर ज़रा भी नहीं झुका। जब जिनी उसके पास आती, तो वह ग़ुर्रा के उसे अपने पास से भगा देता। मैंने दोनों को मिलाने की चेष्टा की। दोनों को साथ लेकर टहलाया, लेकिन बाबर ने जिनी की तरफ़ बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। राज ने कहा कि 'सब बाबर को छोड़ कर जिनी से प्यार करते हैं। यह बाबर को बुरा लगता होगा। कुत्ते का स्वभाव है कि अपने मालिक के प्रेम में वह दूसरे कुत्ते को हिस्सा नहीं दे सकता।' उन्होंने मुझसे कहा कि 'आप दोनों को ज़बरदस्ती मिलाने की कोशिश क्यों करते हैं? इससे बाबर की चिढ़ और बढ़ जायगी। यों थोड़े दिनों में मेल कर लेंगे।'

बाबर शाम को कुछ समय के लिए राज और बच्चों के कमरे में बैठता था। जिनी के आने के बाद जब वह उस कमरे में घुसता और जिनी को देखता, तो वहाँ से निकल कर मेरे कमरे में आ जाता। जिनी की शकल ही उसे अच्छी नहीं लगती थी। राज ने मुझसे फिर कहा कि 'आप बाबर को अपने पास ही रखिए और जिनी को अपने पास बिल्कुल न आने दीजिए। इससे बाबर को इतना इतमीनान तो होगा कि आप बिल्कुल उसी के हैं। नहीं तो उसका दिल टूटेगा।' मेरी समझ में भी बात आई।

शाम को बाबर और मैं कमरे में अकेले थे। बाबर मेज के नीचे मेरी तरफ़ मुँह किए अपने स्थान पर लेटा था। मैंने उससे बातें शुरू कीं। मैंने कहा—'तुम जिनी से क्यों रूठे हो? इसीलिए कि उसने आते ही सारे घर पर राज्य जमा लिया है और तुम्हारे लिए अब मेरा कमरा ही रह गया है। यह तो इस जीवन का खेल है। सब पर यही बीतती है। गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने पर सबकी यही हालत होती है। एक पराई स्त्री आकर अपनी बन जाती है और फिर घर में उसी का साम्राज्य फैल जाता है। सब ताली-कुञ्जियाँ उसी के हाथ में आ जाती हैं। मुझी को देखो। मेरा अपना यही कुटिया रूपी कमरा है। घर तो राज ही का है। तुम्हारे साथ भी यही हो रहा है। तुम जिनी को क्यों नहीं अपनाते। वह तुम्हारे जीवन की साथी बनेगी'—बाबर मेरी बातें सुन रहा था—न मालूम उसने कितना समझा और कितना नहीं। उसकी आँखों में प्रेम की झलक अवश्य थी।

(७)

२७ दिसम्बर की शाम को हम सब बरामदे में बैठे थे। बाबर भी नीचे बैठा था। एकाएक बाबर की तबियत ख़राब हो

गई। उसका दम घुटने लगा। उसका मुँह आधा खुल गया और उसकी आँखें पथराने सी लगी थीं! वह खड़ा था और मेरी ओर बड़ी करुणा भरी दृष्टि से देखता था। मैंने उसे सहलाया और थपथपाया। उसे खड़े होने में तकलीफ हो रही थी और बैठने से साँस घुटती थी। मैं उसे अपने कमरे में ले आया। थोड़ी देर में जानवरों के डाक्टर आए। उन्होंने उसे अच्छी तरह देखा और कहा कि 'इसका टेम्प्रेचर नार्मल से दो डिगरी नीचे चला गया है, दोनों फेफड़े जकड़े हुए हैं और हृदय की गति भी बिगड़ी हुइ है।' उसको डाक्टर ने दो इन्जेक्शन लगाए। डाक्टर के जाने के बाद मैं किसी काम से कमरे के बाहर जाने लगा—मुझे निकलते देख बाबर भी मेरे पीछे-पीछे आने के लिए उठ खड़ा हुआ। मैं वापिस आकर उसके सामने बैठ गया। बाबर यही चाहता था कि मैं उसके सामने ही बैठा रहूँ। रात को थोड़ा गरम दूध पिला कर मैं बाबर का साथ लेकर अपने सोने के कमरे में गया और उसे उसके स्थान पर लिटा दिया। सुबह जब मेरी आँख खुली और मैंने बाबर पर नजर डाली तो उसने लेटे-लेटे ही अपनी दुम हिला-हिलाकर मुझे नमस्कार किया। थोड़ी देर के बाद मैं उसे अपस्ताल ले गया। डाक्टर साहब ने कहा कि 'मैं नहीं समझता था कि यह रात निकालेगा। कल शाम को यह मृत्यु के द्वार तक पहुँच गया था।' उन्होंने फिर बाबर को इन्जेक्शन लगाए और खाने की दवा दी।

बाबर की हालत सुधरने लगी, लेकिन वह बहुत कमज़ोर हो गया था। वह मेरे कमरे ही में बैठता था और जिनी को देखते ही उससे मुँह फेर लेता था। इतना परिवर्तन हुआ था कि जिनी को देखते ही वह ग़ुर्राता नहीं था। हाँ, जब जिनी उससे घनिष्ठता स्थापित करने को उत्सुक होती, तब वह उसे अपने पास से भगा देता। सरदी तेज़ थी परन्तु बाबर को छत पर बैठना न मालूम

क्यों अच्छा लगता था। रात को मेरी आँख बचाकर वह छत पर चला जाता और ऊपर तारों की छाँव में बैठता। कड़ाके की सरदी थी, परन्तु न मालूम बाबर को ऊपर जाकर बैठना क्यों अच्छा लगता था। मैं उसे पुचकार के बुलाता, तब वह धीरे-धीरे उतर कर मेरे साथ सोने के कमरे में जाता। मेरा अनुमान है कि रात्रि में बन्द कमरे में सोना उसे अच्छा नहीं लगता था।

१ जनवरी को मैं स्नान कर अपने कमरे के पीछे आँगन में एक चन्द्राकार चबूतरे पर बैठा पूजन कर रहा था। बाबर मेरे सामने आकर बैठ गया और लगभग आधे घन्टे तक बैठा रहा। उस समय मुझे ध्यानमग्न अवस्था में यही प्रतीत हुआ कि बाबर के साथ भैरव मेरे सामने हैं। अन्तर्मुखी दृष्टि में मुझे बाबर बड़े दिव्य रूप में दिखा।

३ जनवरी को मैं कुछ जल्दी ही जग गया। ४ बजे का समय होगा। मैं अपने कमरे में आया। बाबर भी मेरे सोनेवाले कमरे से मेरे साथ निकल आया था। अपने कमरे में आकर मुझे बाबर का ध्यान आया। मैं समझता था कि वह फिर सोनेवाले कमरे में चला गया होगा। मैंने वहाँ जाकर देखा, लेकिन बाबर अपने स्थान पर नहीं था। भीषण सरदी थी। मैं अपने कमरे में आकर अपने काम में लग गया। सुबह सात बजे बाबर मेरे कमरे में आकर मेज़ के नीचे बैठ गया। मैंने चाय पी और अखबार पढ़ने लगा। इतने में मेरी नज़र बाबर पर पड़ी। वह गर्दन बाहर करके मेरी ओर देख रहा था और संभवतः कुछ देर से मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा कर रहा था। मैंने देखा कि उसकी साँस फिर उखड़ रही है और वह झटके से साँस ले रहा है। मैंने उसे बुलाया। वह कठिनाई से चेष्टा करके उठा और मेरे पास आ गया। उसकी वैसी ही हालत थी, जैसी २७ दिसम्बर

को हुई थी। मैंने मङ्गली ड्राइवर को बुलवाया। बाबर के गले में
ज़ञ्जीर डालकर उसे अस्पताल ले जाने को तैयार हुआ। मोटर
में बैठने के पहिले मैं बाबर को लेकर राज के कमरे में आया।
वहाँ राजा खड़ा हुआ था। बाबर राजा की तरफ़ बढ़ा। राजा
न मालूम क्यों झिझका। मैंने कहा 'डरते क्यों हो! बाबर तुमसे
मिलने आया है।' बाबर को लेकर मैं और मङ्गली अस्पताल
गए। रास्ते भर मैं बाबर को थपथपाता रहा। वहाँ डाक्टर ने
देखकर बताया कि 'इसके फेफड़े फिर जकड़ गये हैं।' बाबर को
दवा दी गई और इन्जेकशन लगे। उसे लेकर मैं घर वापिस आ
गया। घर आकर वह बाहर ही लेट गया। उसकी साँस का वही
हाल था। बड़ी चेष्टा से वह साँस ले रहा था। मैं उसे बाहर से
अपने कमरे में ले आया और उसे मेज के नीचे उसके स्थान पर
छोड़ दिया। मैं समझता था कि वह वहाँ लेट जाएगा। थोड़ी
देर के लिए मैं काम से बाहर गया। जब वापिस आया तो देखा
कि बाबर वैसे ही मेज के नीचे खड़ा है जैसे मैं उसे छोड़ कर
गया था। मैंने समझा कि उसे बैठ कर साँस लेने में कष्ट होता
है। लेकिन उसमें खड़े होने की शक्ति भी नहीं थी। मैंने उसे
कमरे के बीच में कालीन पर लिटा दिया। वह इतना थक गया
था कि वह चारों पैर फैला कर लेट गया। उसकी आँखें खुली
हुई थीं। मैं उसके सामने ही बैठ गया। वह मेरी तरफ़ देख
रहा था। मुझे कचहरी जाना था। मुझे लगा कि अब पहिले से
इसकी हालत कुछ ठीक है। राज ने भी कहा कि 'उसे लेटे रहने
दीजिए। आराम करने से वह ठीक हो जाएगा।' मैं कचहरी
चला गया। दिन को बाबर की तरफ़ ध्यान था। साढ़े तीन
बजे के क़रीब मैं घर पहुँचा। मोटर से उतरते ही अपने
कमरे के सामने ही मैंने राज को देखा। मैंने पूछा कि 'बाबर
कैसा है?'

राज ने कहा—'ख़तम हो गया। बाबर चला गया।' मैं सन्न हो गया।

(८)

कमरे में आकर मैंने देखा कि जिस करवट से मैं बाबर को लिटा गया था, बाबर उसी करवट में लेटा हुआ था। राज ने कहा कि 'मैंने करीब साढ़े बारह बजे आकर देखा था। उस समय वह जीवित था।' फिर जब वे दो बजे कमरे में आईं, तो उस समय बाबर के प्राण-पखेरू उड़ गए थे। उस समय मेरी आँखों में आँसु नहीं आए। लेकिन राज अपने कमरे में जाकर रोने लगीं। बाबर को मङ्गली और मैंने सफेद चादर में लपेट कर मोटर के पीछे रखा। फिर मैंने राज से जाकर कहा कि 'बाबर जा रहा है। उसे अन्तिम बार देख लीजिये।' राज के नेत्रों से अश्रु की धाराएँ बह रही थीं। उन्होंने कहा कि 'मैं देखकर क्या करूँगी।' मेरे आग्रह करने पर वे आईं और उन्होंने बाबर को अन्तिम बार देखा।

पहिले मैंने सोचा था कि बाबर को गङ्गा जी में प्रवाह कर दूँ। फिर कुछ सोच कर मैंने उसे दाह देने का निश्चय किया। उसे लेकर मैं सङ्गम-तट के बाँध पर आया। वहाँ एक कुटिया में अवधूत जयदेव ब्रह्मचारी जी रहते हैं। वे मेरी ही आयु के होंगे और वे मेरे परिचित भी हैं। वे कभी-कभी मेरे स्थान पर आते हैं और मैं भी उनकी कुटिया में यदा-कदा जाता हूँ। ब्रह्मचारी जी की कुटिया के पास मोटर रोक कर मैंने उन्हें बुलाया। वे निकल कर आए। मैंने कहा कि 'बाबर को मैं लेकर आया हूँ और उसका दाह कर्म करना है।'

ब्रह्मचारी जी ने आश्चर्य से कहा—'बाबर मर गया ! अभी तो वह बहुत छोटी ही आयु का था।'

मैंने कहा—'आप तो उससे परिचित थे ?'

उन्होंने कहा—'हाँ ! पहिले तो वह मुझे देखकर भौंकता था परन्तु बाद में वह मुझसे परिचित हो गया था और मुझे देख कर मुझसे लिपटता था।'

मैंने कहा—'इसको इस समय दाह दे दूँगा। कल प्रातःकाल आप इसकी अस्थियाँ बटोर कर गङ्गा जी में डाल दीजियेगा।'

ब्रह्मचारी जी ने कहा—'मैं ऐसा कर दूँगा।'

गङ्गाजी बाँध के नीचे कुछ दूर हट गई थीं। ब्रह्मचारी जी ने कहा कि 'बाँध के नीचे गङ्गा की एक धारा (जिसका पानी अब रुक गया था) है। उसके निकट ही चिता बनवाओ।' ब्रह्मचारी जी गङ्गा जल लेने के लिए गये और मैं बाँध पर स्थित लकड़ी की टाल पर आया। एक महाब्राह्मण, जो ब्रह्मचारी जी का सेवक था और मुझसे भी परिचित था, मेरे साथ था।

लकड़ी लेकर महाब्राह्मण का एक आदमी चिता बनाने लगा। चिता का आकार छोटा था। लकड़ियाँ रखते-रखते उसने मुझसे पूछा—

'किसकी मिट्टी है ?'

मैंने कहा—'कुत्ते की ?'

वह हाथ रोक कर मेरा मुँह देखने लगा। मैं फिर मोटर के पास आया। महाब्राह्मण और मङ्गली ने बाबर को मोटर से निकाला। मैं आगे था, बाबर को उठाये हुए वे पीछे-पीछे धीरे-धीरे बाँध से उतर रहे थे। महाब्राह्मण भी इस वातावरण से प्रभावित हो गया। उसने 'राम-नाम सत्य है' की ध्वनि उच्चारण

की और इसी ध्वनि के साथ बाबर को चिता पर लिटाया। मैंने कहा—'मुँह ठीक रखा है।' महाब्राह्मण ने कहा 'पण्डित जी, उत्तराभिमुख है—ऐसा ही रहना चाहिये।'

ब्रह्मचारी जी भी गङ्गा जल लेकर आ गए। महाब्राह्मण ने कुछ मन्त्रों का उच्चारण किया। मैंने गङ्गा जल लेकर बाबर के मुख में डाला और फिर उसे उसके शरीर और चिता पर छिड़का और अग्नि प्रज्वलित करके चिता की चारों दिशाओं में लगा दी। चिता प्रज्वलित हो गई। ब्रह्मचारी जी ने कहा 'अब चलिये।' मैं धीरे-धीरे चल कर बाँध के ऊपर आया और वहाँ खड़ा होकर फिर अग्नि शिखाओं से लिपटी हुई चिता को देखने लगा। मेरा हृदय फट रहा था। ब्रह्मचारी जी और महाब्राह्मण दोनों ने मुझसे फिर आग्रह किया कि 'अब आप जाइये।'

मैंने फिर ब्रह्मचारी जी से कहा कि 'आप कल बाबर की अस्थियाँ उठवा दीजियेगा।'

मैं घर आ गया। नहा कर अपने कमरे में बैठा। सामने मेज़ के नीचे वह स्थान था, जहाँ बाबर बैठता था। वह अब सूना था। बाबर की शक्ल बार-बार मेरे सामने आती थी। मैं अधीर हो गया। एक पशु का वियोग मेरे मानव हृदय को इतना हिला सकता है, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। बाबर अल्प आयु ही में गया—वह नवयौवन को भी पूरी तरह से प्राप्त नहीं हुआ था। वह साढ़े तेरह मास ही जीवित रहा। मैंने उसे शिशु रूप में खिलाया और थोड़े ही समय में उसने मेरे जीवन में एक गहरा स्थान बना लिया था।

रात्रि में जब मैं अपने सोने के कमरे में जाने लगा तो मैं अकेला था। कमरे के बाहर ही दरी का वह टुकड़ा पड़ा था,

जिस पर बाबर लेटता था। कमरे के अन्दर वह स्थान, जहाँ वह दरी बिछती थी, अब बाबर के बिना शून्य था।

रात को मैं चैन से नहीं सोया। दूसरे दिन सुबह मुझसे रहा नहीं गया। बाँध के नीचे बाबर के अवशेष पड़े होंगे। वही स्थान मुझे खींचने सा लगा। मैंने मङ्गली को बुलाया और बाँध पर पहुँचा। ब्रह्मचारी जयदेवजी प्रातःकृत्य से निवृत्त हुए थे। उन्हें लेकर हम दोनों बाबर की चिता के स्थान पर पहुँचे। एक मिट्टी का घट मँगाया गया। महाब्राह्मण और ब्रह्मचारीजी ने स्वयं अपने हाथ से बाबर के अवशेष बटोर कर उस घट में भरे। घट को लेकर हम ऊपर बाँध पर आए। मुझे अस्थियों को सङ्गम में प्रवाहित करना था। मैं मोटर पर बैठने लगा तो ब्रह्मचारी जी ने कहा कि 'मैं भी चलता हूँ।'

वही घट लेकर मोटर पर बैठे। मोटर बाँध के नीचे सङ्गम की ओर चली। सड़क अभी पूरी तरह बनी नहीं थी। सङ्गम से कुछ दूर पहिले हमें मोटर छोड़नी और पैदल चलना पड़ा। ब्रह्मचारीजी घट को लिए रहे। मैंने आग्रह भी किया परन्तु उन्होंने उसे अपने हाथ ही में रखा। हम दोनों सङ्गम की ओर जा रहे थे। मेरी विचित्र अवस्था थी। मुझे ऐसा लगा कि बाबर हमारे आगे-आगे चल रहा है और रुक-रुक कर दुम हिला-हिला कर हमारी ओर देखता जाता है कि हम उसके पीछे-पीछे आ रहे हैं या नहीं। त्रिवेणी के तट पर पहुँच कर मैंने घट में दूध और पुष्प डाले और फिर चन्द्रशेखर महादेव का ध्यान करते हुए और 'हर-हर महादेव' के मन्त्र को उच्चारण करते हुए ब्रह्मचारी जयदेवजी ने बाबर की अस्थियों को सुर-तरङ्गिणी की गोद में स्थापित कर दिया।

बाबर के वियोग ने मुझे इतना हिला दिया था कि मैं स्वयं

अपनी परिस्थिति से चकित हो गया। ५ जनवरी को मैंने कौलावधूत आचार्य पं० गोविन्द शास्त्री जी को उनके उत्तर में पत्र लिखा। इसके दो मास पूर्व शास्त्री जी जबलपुर से कानपुर जाते हुए दो दिन के लिए मेरे पास ठहरे थे। उन्होंने बाबर को देखा था और जबलपुर में बाबर की खोज की कहानी सुन चुके थे। उन्हें बाबर की मृत्यु की चर्चा करते हुए मैंने लिखा कि 'मैं विस्मित हूँ कि वह कौन था। क्या वह कोई किन्नर या गन्धर्व था, जिसे कुछ समय के लिये पशुयोनि में आना पड़ा? इतनी अल्प आयु में उसने गङ्गा-स्नान किया। पचमढ़ी में तीर्थस्थानों की यात्रा की। होशङ्गाबाद में नर्मदा में नहाया और फिर शरीर त्यागने पर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया संगमतट पर हुई और उसकी अस्थियों को एक अवधूत ब्रह्मचारी ने गङ्गा में प्रवाहित किया। उससे मेरा क्या सम्बन्ध था, जिसके कारण उसका वियोग मेरे लिये इतना दुःखमय हो गया। क्या मेरे कष्ट को स्वयं उसने अपने ऊपर लिया?' शास्त्री जी ने मुझे निम्नलिखित उत्तर दिया—

कानपुर

श्रीः २३ जनवरी १९५८

प्रिय चिरञ्जीव शिवजी,

अनेक आशीर्वाद!

आपका ५ जनवरी का पत्र ठीक समय पर मिल गया था। भैरव लोक को प्राप्त हुए कुत्ते का जो विवरण आपने लिखा है, उसे पढ़कर मेरा हृदय भी करुणा से द्रवीभूत हो गया। आपका अनुमान ठीक है, साढ़े साती समाप्त हो रही है, अब उसकी आवश्यकता बटुक जी ने नहीं समझी, वापिस बुला लिया। उसने

आपको बड़ी विपत्ति से बचा लिया। दैव-प्रेरित ऐसे भाग्यवान जीव कभी-कभी चले आते और काम करके चले जाते हैं। नहीं तो उसके शरीर को ऐसी योगि दुर्लभ गति कैसे होती ?

एक मृगी के कारने भरत धरी दो देह।

कर्म विपाक और महामाया की लीला का यह प्रत्यक्ष चमत्कार घटितहु आ है।

मेरा शरीर आजकल साधारणतः ठीक रहता है।

प्रिय चि० सौ० बिटिया और उसके बालगोपालों को मेरा आशीर्वाद विदित करें और मङ्गल समाचार लिखकर आनन्दित करें।

आपका मङ्गलाकांक्षी
गोविन्द शास्त्री दुगवेकर

❀ ❀ ❀

बाबर चला गया लेकिन वह मुझसे भुलाया नहीं जाता। उसका प्रेम, उसकी चाल, उसकी आन, उसकी बातें अब स्मृतियाँ बन कर रह गई हैं। उसके स्थान में जिनी आ गई है। जिनी चञ्चल और तेज है। वह भी प्रेम रस में भरी हुई है, लेकिन बाबर, बाबर ही था।



गंगोत्री

(१)

१९६२ के ग्रीष्म काल की छुट्टियों में मुझे काम करना पड़ा। इस कारण मैंने सारी गर्मी के दिवस प्रयाग ही में काटे। उसके पश्चात अगले चार वर्षों के ग्रीष्म काल हिमालय के शिखरों के बीच में बीते और प्रत्येक बार मैं तिब्बत के निकट पहुँचा था। १९६३ की मई में मैं लखनऊ से चल कर दूसरे दिन हरिद्वार पहुँचा। मैं सपरिवार था। साथ में मेरी स्त्री, तीनों लड़कियाँ, ज्येष्ठ और सबसे छोटा लड़का थे। मेरा मँझला लड़का सेना में अपनी पलटन के साथ था, अवकाश न मिलने के कारण वह साथ न चल सका। हरिद्वार अधिक न ठहर कर हम सीधे मोटर से ऋषिकेश पहुँचे। वहाँ भी १५-२० मिनट ठहरे होंगे। जब ऋषिकेश से चल रहे थे, तो संयोग से स्वामी शिवानन्द का साक्षात्कार हो गया। वे चार-पाँच भक्तों-सहित पैदल आ रहे थे। हम सब तुरन्त मोटर से उतर पड़े। मैं कुछ वर्ष पूर्व स्वामीजी से एक बार मिल चुका था। "चंडी" मासिक पत्रिका से उनका सम्पर्क था और वे मेरे नाम से परिचित थे। उन्होंने मुझे नहीं पहचाना। जब मैंने अपना नाम बताया, तो उन्हें कुछ स्मरण आया। मैंने कहा कि 'मैं केदारनाथ और बद्रीनाथ की यात्रा पर जा रहा हूँ।' यह सुनकर उन्होने हम सबको आशीर्वाद दिया। इस प्रसंग को यही पूर्ण कर दूँ। जब मैं यात्रा से लौटा, तो स्वामी जी के दर्शन के लिए उनकी कुटी के निकट गया। वहाँ पता लगा कि स्वामी जी बहुत अस्वस्थ हैं

और दर्शन नहीं होंगे। हम सब ऋषिकेश से तुरन्त चल कर हरिद्वार पहुँचे। वहीं दूसरे दिन सूचना मिली कि स्वामी जी का देहावसान हो गया। भाग्य की बात थी कि यात्रा पर जाते समय रास्ते चलते ही उनके दर्शन हुए थे।

ऋषिकेश से मोटर द्वारा उसी दिन तीन बजे हम रुद्रप्रयाग पहुँचे। वहाँ मन्दाकिनी और अलकनन्दा का संगम है। अभी तक अलकनन्दा का साथ था। उसे छोड़ कर हम मन्दाकिनी के साथ हुए और आगे बढ़े। जब कुण्ड पहुँचे, तो सूर्यास्त हो चुका था और अन्धकार फैलने लगा था। मोटर वहीं छोड़नी थी। कुण्ड से पैदल यात्रा आरंभ होने को थी। घोड़ों पर सामान रखा गया, इसमें कुछ समय लगा। पूर्ण अब अन्धकार हो गया था। हमें गुप्तकाशी जाना था, जो वास्तव में कुण्ड से तीन मील आगे और लग-भग २५०० फुट ऊँचे स्थान पर है। हमारे मार्गदर्शकों ने कहा कि 'गुप्तकाशी अधिक दूर नहीं है, सामने दिखती है।' हमने चलना आरंभ किया। प्रथम बार चढ़ाई पर चलना थोड़ी ही देर में असहनीय हो गया। दस क़दम चल कर साँस फूलने लगती; कुछ रुक कर फिर आगे बढ़ते। राज (मेरी स्त्री) की दुर्दशा थी। उन्हीं की क्या, सबका यही हाल था। जब पूछो कि गुप्तकाशी कितनी दूर है तो यही उत्तर मिलता कि अब थोड़ी ही दूर है। इस थोड़ी ही दूर की आशा में आगे बढ़ते गए और किसी न किसी प्रकार पगों को बढ़ाते हुए गुप्तकाशी नौ बजे रात्रि को पहुँच ही गए। वहाँ ठहरने का पहिले ही से प्रबन्ध था। अपने निवासस्थान पहुँचते ही सब लेट गए। सबकी टाँगों का बुरा हाल था, सबके शरीर चूर चूर हो रहे थे। थोड़ा बहुत भोजन करके सब शीघ्र ही निद्रादेवी के वशीभूत हो गए।

दूसरे दिन प्रातःकाल पैदल यात्रा आरंभ हुई। हमारा सामान घोड़ों पर था। किसी ने घोड़े पर बैठना स्वीकार नहीं किया। सब पैदल ही चले। सबके हाथ में डंडा अथवा लकड़ी थी। पिछली रात की पगयात्रा ने पगों को सबल बना दिया था। अब चलना उतना कष्टदायक नहीं था। जैसे कल की यात्रा असहनीय सी हो गई थी। अगला पड़ाव फाटा गुप्तकाशी से १० या १०॥ मील था। मैंने यही निश्चय किया था कि पड़ाव पहुँचने के पहिले कहीं नहीं रुकेंगे। वहाँ पहुँच कर ही विश्राम करेंगे और सायंकाल को नहीं चलेंगे। उस दिन कुछ अड़चन रही। मार्ग में वृष्टि होने लगी और बीच में रुकना पड़ा।

फाटा सायंकाल पाँच बजे पहुँचे और रात्रि भर वहीं रहे। तीसरे दिन फिर प्रातःकाल यात्रा आरंभ हुई। हमको गौरीकुण्ड पहुँचना था, जो फाटा से १० मील है। हम अब बिल्कुल हिमालय के गर्भ में थे और विशेषतः उस क्षेत्र में थे, जो शूलपाणि महेश्वर से विशेष रूप से संबधित है। मार्ग अत्यन्त रमणीक था। एक तरफ़ मन्दाकिनी का कल्लोल नाद, दूसरी ओर सघन क्षेत्र। हम साल, देवदार और चीड़ के वृक्षों के नीचे होकर जा रहे थे। स्थान स्थान पर गुलाब की पुष्पों से लदी झाड़ें थीं। नाना प्रकार के पुष्पों की सुगन्ध से समस्त वातावरण हृदय में उल्लास उत्पन्न कर रहा था। फाटा से दो-ढाई मील चलने के पश्चात् एक छोटे गाँव में हम कुछ समय के लिये रुके। वहाँ चाय की दुकान भी थी, जिसमें कुछ खाने की सामग्रियाँ भी थीं। सब लोग चाय पीने लगे। वहीं से त्रिजुगीनारायण को भी मार्ग जाता था। मुझे पहिले से इसका ध्यान नहीं था, अन्यथा हम वहाँ के दर्शन भी कर लेते। हमें तो उसी दिन गौरीकुण्ड पहुँचना था।

त्रिजुगीनारायण वह स्थान है, जहाँ पार्वती का शिव से विवाह हुआ था। कहते हैं कि उस समय हवन-कुण्ड में जो अग्नि दीप्तिमान हुई थी, वह आज भी प्रज्वलित है। यात्री उसी कुण्ड में समिध डालते हैं, जिससे अग्नि शान्त न हो। मैं चाय पीकर दुकान से कुछ आगे बढ़कर शिव पार्वती के विवाह को सोचने लगा। यह समस्त क्षेत्र शङ्कर की लीला से व्याप्त था। यहीं शिव अपना विवाह रचने आए थे। उनके विवाह का वर्णन कितने काल से होता चला आ रहा है। अनेक कवियों ने अपनी लेखनी से उस दैवी घटना का वर्णन किया है। सदाशिव और जगज्जननी का पाणिग्रहण—इस ध्यान ने मुझे रोमांचित कर दिया। भवानी तो जिस रूप में हों, सदाशिव के सर्वथा साथ रही हैं। चाहे दक्ष-कन्या के रूप में, चाहे शैल-सुता के रूप में, वे दोनों तो सर्वदा संयुक्त ही रहे हैं। महिमामयी आदिशक्ति का वास्तविक रूप किसी ने समझा, तो वे शिव ही हैं और महामाया ने स्वयं जिसे ग्रहण किया; वे सदाशिव ही हैं। ये दोनों ही समस्त जगत में वन्दनीय हैं :—

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ ॥

मैं शाम्भवी लीला की कल्पना ही में डूबा हुआ था कि एक यात्रिणी मेरे पास आकर खड़ी हो गई। वह भी हमारे साथ-साथ ही गुप्तकाशी से चली थी। मार्ग में मैंने उसे दो-तीन बार देखा था। कभी वह चलते-चलते मुझसे पीछे हो जाती; कभी जब मैं सुस्ताने लगता तो वह मुझसे आगे बढ़ जाती। यात्रियों का एक समूह साथ-साथ चल रहा था। उसमें समस्त भारत के कोने-कोने के स्त्री-पुरुष थे। केदारनाथ से लौटते हुए भी यात्री मिलते थे और यहाँ की प्रथा के अनुसार सब एक दूसरे से 'जय केदार-

नाथ' कहते जाते थे। उस स्त्री की छटा कुछ निराली थी। उसकी आयु ३५-३६ के बीच ही में होगी। मध्यम गौर वर्ण, गठा हुआ भरा शरीर, कुछ लम्बा कद, बड़े नेत्र उसकी आभा में एक विलक्षणता प्रदान कर रहे थे। वह एक हल्के कत्थई रङ्ग की साड़ी और स्वेटर पहने हुई थी, कन्धे पर एक हल्का कम्बल और एक झोला लटक रहा था। पैर में टेनिस का जूता और हाथ में डण्डा था। वह मेरे अधिक निकट आ गई और बोली—

(मेरी स्त्री की ओर संकेत करते हुए) 'क्या वह तुम्हारी स्त्री है?'

'हाँ!'

'और लड़कियाँ और लड़के?'

'मेरे पुत्र और पुत्रियाँ हैं।'

'आप कहाँ रहते हैं?'

'प्रयागराज।'

'ओहो! आपका घर तो तीर्थराज में है!'

'तुम्हारा घर कहाँ है?'

'पहिले ढाका में था, अब कलकत्ता में रहती हूँ।'

मैंने उसके मस्तक की ओर दृष्टि डाली, बालों की मांग के मध्य में सिन्दूर का छोटा टीका था।

मैंने कौतूहल से पूछा—तीर्थयात्रा अकेली क्यों कर रही हो? अपने पति को साथ क्यों नहीं लाईं?'

'मेरे भाग्य तुम्हारे जैसे नहीं हैं।'

'क्यों?'

'एक चाण्डालिनी ने मेरे पति को मुझसे छीन लिया है। मैं अब गृहिणी नहीं रही। मेरा घर ध्वंस हो गया। अब तो मैं भगवान् ही की शरण में हूँ।'

मैं सन्नाटे में आ गया। उसके मुख की मन्द मुसकान लोप हो गई थी। उसकी दृष्टि पर्वत-शिखरों की ओर थी। उसके हृदय की पीड़ा ने क्षण भर में उसे शोकातुर बना दिया। मैंने कहा—'तुम्हारी कोई सन्तान है ?'

'हाँ, एक लड़की। वह अब ११ वर्ष की हो गई है। उसे मैंने अपने सहोदर के पास रखा है। मेरे पास अब क्या है, जो उसे अपने साथ रखूँ !'

'तुम्हारे पति को क्या तुम्हारी और अपनी कन्या की चिन्ता नहीं है ?'

'यदि कुछ भी होती, तो क्या मैं पर्वत और वनों में इस प्रकार से भटकती ? उस पिशाचिनी ने उनकी मति भ्रष्ट कर दी है। उन्हें मेरी और कुमुद की लेश मात्र भी चिन्ता नहीं है।'

'कुमुद कौन ?'

'मेरी कन्या !'

यात्रा फिर आरम्भ हुई। मेरी स्त्री राज चाय की दुकान से आगे बढ़ी। मैं उनकी प्रतीक्षा करने लगा। बङ्गाली महिला आगे बढ़ गई। राज ने मेरे निकट आकर कुछ व्यङ्ग भाव से पूछा—

'यह आपको कौन पुरानी जान-पहचान की मिल गई ?'

'जान-पहचान की भली कही, मैं तो अब भी उसका नाम तक नहीं जानता।'

'आप दोनों बातें तो ऐसे घुल-घुल के कर रहे थे, जैसे एक दूसरे को बहुत काल से जानते हैं !'

'आपको बुरा तो नहीं लगा ?'

राज ने मुसकान से कहा—'यदि आपको न जानती होती, तो बुरा भी लगता और क्रोध भी आता, परन्तु इतने दिनों के

साथ ने यह तो सिखा ही दिया है कि आप और आपके गणों की और आपके पास आनेवालों की लीला ही विचित्र है। अनेक प्रकार के लोग आपसे आकृष्ट होते हैं, परन्तु वे आपको नहीं जानते।'

'क्या आप जानती हैं?'

'अब भी नहीं जानूँगी। वे सब समझते हैं, आप उनके साथ हैं। परन्तु वे आपका वास्तविक रूप नहीं जानते। आप उनके निकट प्रतीत होते हुए भी उनसे बहुत दूर रहते हैं।'

'क्या आप पहेली बुझवा रही हैं?'

'नहीं, सत्य कह रही हूँ।'

'मैं कुछ नहीं समझा।'

'समझ के क्या करिएगा। बस इतना ही समझ लीजिए कि वह महिला आपसे चाहे जितनी बातें करे, मुझे कोई चिन्ता नहीं है।'

इतना कहकर राज आगे बढ़ गईं। कुछ देर तक मैं उन्हें विस्मय से देखता रहा और फिर मैं स्वयं आगे बढ़ा। राज के चलने की गति समान थी। वे धीरे-धीरे चलती थीं, परन्तु चलती ही जाती थीं। रुकने का नाम नहीं लेती थीं। उसके विपरीत मैं तेज़ चलता था और फिर रुक जाता था। थोड़ी ही देर में मैं राज के निकट आ गया और चेष्टा करके उनके साथ-साथ चलने लगा। मैंने बङ्गाली महिला से जो बातें हुई थीं, वह कह सुनाईं। उसका हाल सुनकर राज को उसके साथ सहानुभूति हो गई। वे बोलीं—'औरत पढ़ी-लिखी जान पड़ती है और अच्छे घर की दिखती है। बेचारी पर बड़ी बिपता पड़ी है। उसके पास ओढ़ने का

सामान भी नहीं हैं! आप क्यों नहीं उससे कहते कि हमारे साथ ही ठहरे? उसे कुछ सुविधा होगी।'

'यह आप ही कहिए, मैं नहीं कहूँगा।'

'उससे बातें करते हुए लज्जा नहीं आई, अब यह कहते हुए शरम आती है कि हमारे साथ अगले पड़ाव पर ठहरो।';

'मैं पराई स्त्री से कैसे कहूँ कि हमारे साथ रहो। आप स्वयं कहिए—मैं नहीं कहूँगा।'

राज हँसने लगीं। मैंने अपनी चाल तेज़ की और आगे बढ़ गया। थोड़े समय के पश्चात् मैं बङ्गाली महिला के निकट आ गया। वह मुझे देखकर बोली—'आप दोनों बड़े धीरे चलते हैं।'

'मैं तो धीरे नहीं चलता—हाँ, मेरी स्त्री की चाल बहुत मन्द है।'

वह मेरे साथ-साथ चलने लगी। मैंने उसका नाम पूछा। उसने कहा—'शैलबाला।'

'इन पर्वत-शिखरों के बीच में तुम्हारा नाम तो बहुत ही उपयुक्त है। क्या तुमने समतल भूमि को छोड़कर इसी क्षेत्र में निवास करने का सोचा है!'

'नहीं—अभी मुझे समतल भूमि ही का आकर्षण है। उस भूमि को कैसे त्याग सकती हूँ, जहाँ मेरे पति हैं। मैं उन्हें छोड़ नहीं सकती, चाहे वे मेरी कितनी ही दुर्दशा क्यों न करें। हाँ, जब मैं उन्हें पुनः प्राप्त कर लूँगी तो उनकी चिरसङ्गिनी बनकर कहीं भी रहूँ, मेरे लिए समान होगा।'

'तुम्हारे पति क्या करते हैं?'

'वे बैरिस्टर हैं।'

'तुम्हारे पिता का घर कहाँ है ?'

'उनका स्वर्गवास हो गया। उनका बहुत विस्तृत व्यापार था। मेरा एक भाई है। वही सब काम देखता है। कुमुद भी उसी के पास रहती है।'

'तुमने कहाँ तक पढ़ा है ?'

'मैं काशी महाविद्यालय में बी० ए० की कक्षा में पढ़ रही थी, उसी समय मेरा विवाह हुआ और पढ़ाई छूट गई।'

'तुम्हारा भाई तुम्हारी सहायता करता है ?'

'वह मुझसे छोटा है और मेरा बहुत आदर करता है। मेरे पिता ने मुझे सम्पत्ति भी दी है। भाई ने कहा कि काशी ही में रहो, परन्तु मैंने कहा कि कुमुद को रखो। मुझे उससे और अधिक कुछ नहीं चाहिए। जब मेरी समस्त चेष्टाएँ निष्फल हुईं, तब मैंने भगवान् के चरण पकड़े हैं। कब तक विधाता मेरी नहीं सुनेगा ! जब तक मेरे पति मुझे नहीं मिलेंगे, मैं भी भगवान् का पीछा नहीं छोड़ूँगी।

'तुम बड़ी हठी हो।'

'इसे हठ ही कहिये—परन्तु कभी न कभी तो मेरा प्रण पूर्ण होगा ही।'

मैंने हँसते हुए कहा—'ऐसा ही प्रण गिरिजा का भी था और उन्हें अन्त में शङ्कर मिल ही गए। तुम भी शैलबाला ठहरीं, गिरिराज-किशोरी से पीछे कैसे रहोगी !'

'आप निष्ठुर हैं, मुझसे व्यङ्ग करते हैं। आप मेरी हृदय की पीड़ा को क्या जानें !'

'नहीं, नहीं, शैल, ऐसा मत समझो, तुम मेरी छोटी बहिन के समान हो। यदि मेरी सद्भावना और आशीर्वाद तुम्हारी

मनोकामना को सफल बनाने में सहायक हो सकते हैं, तो विश्वास रखो कि वे सर्वदा तुम्हारे साथ रहेंगे ।'

इतना कहकर मैं आगे बढ़ गया। पुष्पों की सुगन्ध, गहन वृक्षों की छाया, मन्दाकिनी का कल्लोल नाद, गगनचुम्बी पर्वत-शिखरों से गिरती हुई जल-धाराएँ, पक्षियों का गुञ्जन, समस्त वातावरण को स्वर्ग का प्रतिबिम्ब बनाए हुए थीं। मैं आगे तो बढ़ रहा था परन्तु विचारों की तरंगें कभी मन्दाकिनी की वेगमयी गर्जन से टकराती थीं, कभी पर्वत-शिखरों के ऊपर उठकर नभोमण्डल में विचरने लगती थीं और अनादि तत्वों को भेदने की चेष्टा करती थीं।

हम एक बजे के पहिले ही गौरीकुण्ड पहुँच गए और वहाँ ठहरे।

गौरीकुण्ड पहुँचने के पहिले ही राज की शैलबाला से बातचीत हो गई थी। उनके कहने से शैलबाला ने हमारे साथ ठहरना स्वीकार कर लिया। गौरीकुण्ड में हमें एक मकान के ऊपर का समस्त भाग मिल गया था। वहीं सायंकाल और रात्रि भर विश्राम रहा। पास ही गौरी का मन्दिर था और दूसरी ओर गन्धक से मिश्रित गरम जल का चश्मा, जिसको एक कुण्ड में मिला दिया गया था। हम सभी ने उस कुण्ड में स्नान किया। इतने गरम पानी में अधिक समय तक ठहरा नहीं गया, परन्तु उस स्नान से शरीर की थकावट बहुत कुछ दूर हो गई।

गौरी के मन्दिर में जगदम्बा की बड़ी भव्य मूर्ति थी। हम सब वहाँ सायंकाल की आरती में सम्मिलित हुए। मैं सोचने

लगा कि महादेव तो आगे केदार-शिखर पर बैठे हुए हैं, परन्तु भवानी उनसे दूर यहाँ कैसे अकेली बैठी हैं! क्या कुछ रूठ कर थोड़े समय के लिए यहाँ आ गई हैं और शंकर को एकान्तवास के लिए केदार पर छोड़ दिया? मैंने ध्यान से फिर मूर्ति की ओर देखा। उससे यह प्रतीत नहीं हुआ कि रूठने का कोई भाव है। फिर उनके दक्षिण में चन्द्रशेखर एक छोटे नर्मदेश्वर के रूप में दिखाई दिए। तुरन्त ही मेरा भ्रम दूर हो गया। शिव और पार्वती—ये आपस में ऐसे संयुक्त हैं जैसे वाणी और वाक्य, शब्द और अर्थ। ये दोनों एक दूसरे से पृथक् कैसे हो सकते हैं!

(२)

शैलबाला बहुत शीघ्र ही हमारे परिवार का अंग हो गई। लड़कियाँ तो उसे गौरीकुण्ड के निवास-स्थान में घेर कर बैठ गईं और बहुत समय तक उसको नाना-प्रसंगों पर रोचक बातें सुनती रहीं। दूसरे दिन प्रातःकाल से हमारी सबसे कठिन यात्रा आरम्भ हुई। गौरीकुण्ड समुद्रतट से ६००० फ़ुट की ऊँचाई पर है और केदारनाथ की ऊँचाई ११७०० फ़ुट है। लगभग ६००० फ़ुट की चढ़ाई पर ७ मील चलकर पहुँचना था। कुछ दूर तक सघन वृक्षों के बीच से होकर मार्ग था, परन्तु उसके पश्चात वृक्षों का अन्त हो गया और हम हिमकुन्दों के बीच में होकर ही ऊपर चढ़ते गए। ऊपर ऊपर ही चढ़ते गए। मन्दाकिनी भी हिम-भार से दबी हुई थीं और उनका आकार भी छोटा होता जाता था। मार्ग में कहीं-कहीं भोजपत्र के वृक्ष दिखाई देते थे। हम चढ़ते चले गए। बीच-बीच में मैं, राज और लड़कियाँ घोड़ों पर भी बैठे परन्तु लड़के और शैलबाला पैदल ही चले।

मार्ग में बात करना असम्भव था। ऊपर चढ़ते-चढ़ते बुरा हाल हो रहा था। थोड़ा चल कर विश्राम करना पड़ता था। किसी तरह से शरीर को ऊपर घसीटते हुए हम सब आगे बढ़ते ही गए। फिर समतल भूमि आ ही गई।

एक ओर मन्दाकिनी थी। दाहिने-बाएँ ऊँची पर्वत-मालाएँ और सामने केदारनाथ का मन्दिर तथा उसके पीछे का दृश्य तो विलक्षण ही था। एक के पीछे एक श्वेत गगनचुम्बी पर्वत-मालाएँ थीं, जो आकाश को भेद रही थीं और हिम के आवरण से पूर्णरूपेण ढँकी हुई थीं। वे सदाशिव के मन्दिर की पीछे की दीवार बनी खड़ी हुई थीं। दृश्य अलौकिक था। हम सब स्तब्ध होकर आगे बढ़े और अपने निवास-स्थान पहुँचे। थोड़ी ही देर में घोर वृष्टि आरम्भ हो गई। कड़ाके की शीत थी। हम सबने कुछ जलपान किया और थोड़े समय के लिए ओढ़-आढ़ के लेट गए। सायंकाल की आरती के समय मन्दिर में गए। मुख्य पुजारी नम्बूदरी ब्राह्मण थे। उन्हें पहिले से मेरे आने की सूचना मिल गई थी। वे भी 'चण्डी'-परिवार के थे। मुझसे उन्होंने कहा कि 'आप कालीमठ क्यों नहीं गए?' मैंने कहा कि 'मैंने गुप्तकाशी के पास ही वहाँ जाने का मार्ग देखा था, परन्तु समय के अभाव के कारण नहीं जा सका।'

आरती आरम्भ हुई। हम शिला-रूपी भगवान् के बहुत निकट खड़े थे। यही प्रतीत हो रहा था कि त्रिलोचन नटराज सम्मुख हैं। बड़ी सुन्दर विधि से उनकी अर्चना हुई। वह समय ऐसा बीता कि पता ही नहीं चला कि हम कहाँ हैं और कब से हैं। सबकी यही स्थिति हो रही थी। मैंने शैलबाला की ओर देखा। वह ऐसी लग रही थी, जैसे भवानी की एक योगिनी।

उसकी भृकुटियाँ कुछ तनी हुई थीं, उसके अर्द्ध-स्फुटित नेत्र उसके मुख की कान्ति में गम्भीरता का हल्का-सा भाव उत्पन्न कर रहे थे। वह शंकर के ध्यान में मग्न थी। शिव की स्तुति उच्चारण होने लगी। विशाल हिम आच्छादित तुहिन-मण्डल के मध्य में चन्द्रशेखर के मन्दिर का गर्भ मानो कैलास-शिखर बना हुआ था, जहाँ पशुपति का निवास है। मैंने पुनः शैलबाला की ओर देखा। वह नतमस्तक किए हुए त्रिलोचन का ध्यान कर रही थी। मैं उसके हृदय की पीड़ा को जानता था। मेरे मन में आया कि सदाशिव के सामने उसके हृदय का रुदन-नाद रति के विलाप से कम नहीं होगा। अवश्य ही उसकी मनोकामना पूरी होगी।

मन्दिर से वापिस आकर कुछ समय हम बाजार में घूमे और फिर हमने निवास-स्थान पहुँच कर भोजन किया। मैं थक गया था। इस कारण जल्दी ही लेट गया, परन्तु विलास, राजलक्ष्मी और दामिनी शैलबाला को घेर कर बैठ गए। उनके बीच में शैलबाला का उदासीन और गंभीर रूप नहीं रह गया था, उसमें विनोद और हास्यरस का भाव था। तरह तरह के हँसानेवाले और रोचक प्रसङ्गों को उसने छेड़ा और लड़कियों को मुग्ध किया। वह उनकी दीदी बन गई थी।

दूसरे दिन ९ बजे हमें वापिस चलना था। किसी ने मेरे छोटे लड़के मार्कण्डेय से कह दिया कि मन्दिर के पीछे की पर्वतमाला के उस पार किन्नर और गन्धर्वों का निवास है। १७ वर्ष का बालक बिना हमसे कहे उनकी खोज में निकल गया और १०००-१५०० फुट ऊपर चढ़ गया। मुझे जब पता लगा, तो मैं चिन्तित हुआ। एक दो आदमियों को उसकी खोज में भेजा।

कुछ समय पश्चात् वह वापिस आया। किन्नर और गंधर्व तो उसे नहीं मिले, लेकिन उनकी खोज ने उसे बहुत थका दिया था।

हम सब गौरीकुण्ड की ओर चले। अब नीचे ही नीचे चलना था। इस प्रकार का चलना भी कष्टदायक होता है। जङ्घा और पिंडलियों पर बहुत ज़ोर पड़ता है। कुछ दूर चलने के बाद मैं थोड़े समय के लिए रुक गया था। वहाँ शैलबाला भी पहुँची और मेरे साथ चलने लगी। मुझे उसके सम्बन्ध में और अधिक जानने का कौतूहल था। मैंने यही प्रसंग उठाया। मैंने कहा—

'मैं तुम्हारी आत्मकथा सुनना चाहता हूँ।'

'उसे सुनकर क्या करिएगा! अब तो आप मेरे सम्बन्ध में बहुत कुछ जान गए हैं। और क्या सुनना चाहते हैं?'

'मुझे अपने जीवन का हाल विस्तार से बताओ। उसे जानकर ही मैं तुम्हें उचित सलाह दे सकूँगा।'

'आपने मुझे बहुत आकृष्ट किया है। मुझे स्वयं आश्चर्य है कि मैं कैसे इतनी शीघ्रता से आपके निकट आ गई। नारायण ने मेरी प्रार्थना सुनी है। इसी कारण मुझे आप जैसा आत्मज मिला है। पूर्व जन्म में मेरा आपसे अवश्य निकट सम्बन्ध रहा होगा।'

'हो सकता है। अब अपने विवाह के पहिले से अपनी आत्मकथा सुनाओ।'

'अच्छा, कहती हूँ।' इतना कह कर शैलबाला थोड़ी देर मौन रही, फिर उसने कहना आरम्भ किया—

यह तो मैं आपसे कह ही चुकी हूँ कि मेरे पिता काशी में रहते थे और वे सम्पन्न थे। मैं और मेरा छोटा भाई, ये दो ही उनकी सन्तान हैं। मैं बड़े लाड़-दुलार में पली। जब मैं १८ वर्ष की थी, तो मेरी माता का स्वर्गवास हो गया। उस समय मैं काशी विश्वविद्यालय में बी० ए० की प्रथम कक्षा में पढ़ रही थी। मेरे पिता को मेरे विवाह की चिन्ता थी। हमारे एक निकट सम्बन्धी काशी ही में रहते हैं। उन्हीं के घर में पहिली बार मैंने आशुतोष को देखा। वह उसी साल लन्दन से बैरिस्टरी पास करके आए थे। प्रथम मिलन के पश्चात् दो-तीन बार हम और मिले और इसी अवधि में हम दोनों ने निश्चय किया कि हम एक दूसरे के जीवन साथी होंगे।

आशुतोष लाहिड़ी का परिवार सम्पन्न था और इस सम्बन्ध से मेरे पिता को कोई आपत्ति नहीं थी। दोनों के घर के लोग इससे प्रसन्न थे। हमारे विवाह की तिथि निश्चित हुई और जब मैं बी० ए० की दूसरी कक्षा में पढ़ती थी, उसी काल में बड़ी धूमधाम से काशी में मेरा विवाह हो गया।

मैं कलकत्ता आकर अपने पति के साथ रहने लगी। उनके माता-पिता बर्दवान में थे परन्तु आशुतोष कलकत्ता में वकालत करते थे। इसी कारण हमारा घर वहीं था। हमारा दाम्पत्य-जीवन सुखमय था। मेरे पति का काम भी बढ़ने लगा। ढाका में मेरे पति का परिवार बहुत सम्पन्न था, परन्तु बंगाल के विभाजन के पश्चात घर का वैभव बहुत कम हो गया था। मेरे विवाह के कुछ काल बाद तक मेरे श्वसुर हमारी सहायता भी करते थे। कुमुद ने हमारे घर में आभा और गुञ्जन ला दिया। उस समय मैं सोचती थी कि मुझसे अधिक सुखी स्त्री और

कोई नहीं है। एक स्त्री के लिए पति-प्रेम क्या है—आप समझ सकते हैं। मुझे उन दिनों वह पूर्णरूपेण प्राप्त था।

कुमुद के जन्म के चार वर्ष पश्चात् एक बालक का जन्म हुआ। वह दूसरे दिन ही चला गया और मैं भी रोग-ग्रसित हो गई। उस प्रसूतकाल के अवसर पर वह पिशाचिनी मेरे घर में नर्स बन कर आई। पहिले मैं यही समझी कि वह मेरी हितैषी है। वह मेरी सेवा करती थी। मैं भी उसे अपनी बहिन की तरह देखती थी। वह नर्स के रूप में हमारे घर में लगभग एक मास रही। मैं अस्वस्थ थी और शैय्या पर पड़ी रहती थी। मैं पहिले तो यह समझी ही नहीं कि वह मेरे घर में आग लगा रही है। मैं तो एक कमरे में अलग पड़ी थी, उसने मेरे पति को अपनी ओर खींचना आरम्भ किया और जब मुझे इस रहस्य का पता लगा, तब वे पूर्ण रूप से उसके पञ्जे में आ गए थे।

एक दिन मैं अपनी शय्या पर से उठकर दूसरे कमरे में गई तो मैंने उन दोनों को बहुत घनिष्ठता की स्थिति में देखा। उस दृश्य को देख कर मैं अवाक् रह गई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मैंने विषपान किया हो। मैं चुपचाप अपने कमरे में आकर लेट गई। उसके बाद माधवी ने, उस नर्स का नाम माधवी है, मेरे पास आना छोड़ दिया। मेरे पति मेरे पास आए। उनके मुख पर रोष का भाव था। मुझसे यह भी नहीं पूछा कि मेरा क्या हाल है। वे कुछ क्षण के लिए चुपचाप खड़े रहे। मुझसे रहा नहीं गया। मैंने केवल इतना ही कहा कि 'मुझे अब माधवी की आवश्यकता नहीं है, वह अब आज से मेरे घर न आए।'

मेरा इतना कहना था कि उनकी क्रोधाग्नि भड़क गई। उनका मुख विकृत हो गया। बड़े आवेश के साथ उन्होंने कहा—'वह अब तुम्हारी सेवा करने नहीं आएगी, परन्तु यह मेरा घर है। मैं जिसको चाहूँगा, उसे बुलाऊँगा, तुम रोकनेवाली कौन होती हो? वह मुझसे मिलने यहाँ अवश्य आएगी।'

इतना कहकर वे कमरे से बाहर चले गए। मैं शय्या पर पड़ी-पड़ी रोने लगी। कई दिन बीत गए। मैं लोट-पोटकर ठीक हो गई, परन्तु वे मुझसे ऐसे विमुख हो गए थे, जैसे कभी मेरे थे ही नहीं। उनको मेरी अथवा कुमुद की बिल्कुल चिन्ता नहीं थी। मेरे पास उन्होंने आना ही छोड़ दिया। कुमुद ने उनके निकट जाने की एक दो बार चेष्टा की, परन्तु उन्होंने उसे ऐसा झिड़का कि बेचारी अबोध बालिका उन्हें देखकर ही भयभीत होने लगी थी। माधवी अब निस्संकोच हमारे घर में आने लगी थी और मेरे पति के साथ घण्टों बैठती थी। मैं इस लीला को देखती थी और घोर वेदना को चुपचाप सहन करती थी। आप नहीं समझ सकते, उस समय मेरी क्या स्थिति थी। अपने ही घर में मैं पराई हो गई और जिसका मुझे सहारा था, वही पराया बन गया था।

एक दिन मैं कोई वस्तु लेने उस कमरे में घुसी, जिसमें वे और माधवी बैठे थे। मुझे ध्यान ही नहीं था कि वे दोनों वहाँ हैं। मुझे देखते ही उन्होंने उत्तेजित होकर कहा कि 'यहाँ क्यों आई हो?' और फिर ऐसे अपशब्द कहे, जिन्हें मैं कहना नहीं चाहती। माधवी भी मुझे ऐसे देख रही थी, जैसे कह रही हो कि 'समझो, मैं कौन हूँ।' मुझसे रहा नहीं गया, मैंने भी आवेश में कहा—'क्या यह मेरा घर नहीं है? मेरे घर ही में तुम पराई स्त्री को लाकर मेरा अपमान करते हो—क्या यह उचित है?'

मेरा इतना कहना था कि माधवी भी मुझे क्रोध से घूरती हुई बोली—'तुम भी मेरा अपमान कर रही हो—क्या मुझे इन्होंने इसीलिए बुलाया है कि यहाँ मेरा अपमान हो। मैं यहाँ नहीं ठहरूँगी' और फिर उनकी ओर देखकर बोली—मैं, जब तक यह यहाँ है, इस घर में कभी नहीं आऊँगी।

इस पर आशुतोष माधवी से बोले—'मेरे रहते हुए यहाँ तुम्हारा अपमान कौन कर सकता है?'

मुझे भी क्रोध आ गया था, मैंने कहा—'यह मेरे यहाँ रहते इस घर में नहीं आ सकती।'

मेरा इतना कहना था कि आशुतोष आपे से बाहर हो गए, उन्होंने चिल्लाकर कहा—'तुम यहाँ से चली जाओ।'

मैं रोने लगी और कुमुद भी मेरे पास आकर मुझसे लिपट गई। उन्होंने मुझसे फिर कहा कि 'इस घर से निकल जाओ और कुमुद को भी अपने साथ ले जाओ। अब तुम दोनों का यहाँ स्थान नहीं है।'

मैं यह सब सहन नहीं कर सकी। अपने कमरे में आकर एक छोटे बेग में अपने और कुमुद के कुछ कपड़े रख कर मैं निकली और मैंने कहा कि 'मैं जा रही हूँ।' उन्होंने यही उत्तर दिया कि 'शीघ्र निकल जाओ।'

हम दोनों अपने घर से निकल आए। मैं सीधे हावड़ा स्टेशन आई और पहली गाड़ी से चल कर काशी आ गई। यह सब काण्ड सुनकर मेरे पिता को बहुत दुःख हुआ। वे उन दिनों अस्वस्थ थे। कुछ मास के पश्चात् उनका स्वर्गवास हो गया। मेरे छोटे भाई मृत्युञ्जय ने मुझे बड़ा सहारा दिया। वह स्वयं

दो तीन बार कलकत्ते जाकर आशुतोष से मिला, परन्तु उन्होंने उसका भी अपमान किया और सीधे मुँह बात भी नहीं की। अनेक निकट सम्बन्धियों ने भी चेष्टा की कि आशुतोष मुझे बुला ले, परन्तु सब कुछ निष्फल रहा। अब मुझे घर से निकले पाँच वर्ष से अधिक हो गए हैं। जब मैंने देखा कि किसी के किये कुछ नहीं होता, तो मैंने यही निश्चय किया कि मैं भगवान् का सहारा लूँगी। वही मेरा दुःख दूर करेंगे। मेरी आत्मा भी कहती है कि भगवान् ही मुझे इस कष्ट से मुक्त करेंगे।

पिछले दो वर्षों से मैंने भाई का घर भी छोड़ दिया। अब ईश्वर पर आश्रित हूँ। मैंने कालीघाट में एक धर्मशाला में एक छोटा सा कमरा ले लिया है और वहीं रहती हूँ। काशी और कलकत्ता में मैंने महामाया और देवी-देवताओं से विनती की है, अब मैंने इस देवभूमि में शङ्कर, जगज्जननी और नारायण के चरणों में अपने आपको डाला है। देखती हूँ कब तक ये समस्त देवी-देवता मेरी असह्य वेदना को दूर नहीं करते।

इतना कहकर शैलबाला चुप हो गई। मैंने उसकी ओर निहारा। उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। हम दोनों मौन अवस्था में नीचे उतर रहे थे। उसकी आत्मकथा सुनकर मैं भी करुणा से द्रवीभूत हो गया। कुछ दूर और चलने के बाद मैंने कहा—'शैल, तेरी तपस्या निष्फल नहीं रहेगी। तेरे ही जैसे आर्तों का कष्ट दूर करने भगवान को भी पृथ्वी पर आना पड़ता है। मुझे यही प्रतीत हो रहा है कि शीघ्र ही तेरे मनोरथ पूर्ण होंगे।'

'भय्या, आप नहीं समझ सकते, आप मुझे कितनी शक्ति प्रदान कर रहे हैं। मुझे यही लग रहा है कि देवताओं ही ने आपको मेरी सहायता के लिए भेजा है।'

उसके 'भय्या' के शब्द में इतना प्रेम भाव था कि उसका कष्ट मुझे स्वयं अपनी ही वेदना बन कर काटने लगा। हम चलते-चलते रुक गए थे। इतने में राज और लड़कियाँ भी आ गईं। शैल उनके साथ हो गई। मैं भी कुछ देर रुक कर आगे बढ़ने लगा। दो बजे के लगभग हम लोग गौरीकुण्ड पहुँचे और वहाँ रात्रि में विश्राम किया। फिर फाटा और गुप्तकाशी में ठहरते हुए तीसरे दिन सायंकाल को चमोली पहुँच गए।

कुण्ड से केदारनाथ आने और जाने में ६० मील पैदल यात्रा हुई थी। चमोली में ठहर कर दूसरे दिन जोशीमठ पहुँचे। वहाँ भी रात्रि भर रहे। मैं ज्योतिर्मठ गया और आदि शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित मठ को देखा, जिसका कुछ वर्ष पूर्व जीर्णोद्धार हुआ था। अगले दिन विष्णु गंगा के पुल से पुनः हमारी पद-यात्रा आरम्भ हुई। पांडुकेश्वर में भोजन करके आगे बढ़े और सायंकाल लामबगढ़ में आकर विश्राम किया।

लामबगढ़ की रमणीकता ने हम सबको मुग्ध कर दिया। हमारा निवास स्थान सुन्दर वृक्षों, लताओं और पुष्पों से आच्छादित था। नीचे अलकनन्दा की नृत्यमयी वेगधारा ऐसी प्रतीत होती थी जैसे स्वर्ग की कोई जलधारा हो। उस वातावरण ने मुझे अन्तर्मुखी बना दिया। मौन रहकर मैं उन विशाल पर्वत-शिखरों को देखने लगा, जिनकी छाया में लामबगढ़ का ग्राम बसा है। शैलबाला को लड़कियों ने घेर रखा था। मैं उनके निकट पहुँचा तो कुछ शब्द मेरे कानों में पड़े। प्रसङ्ग था स्त्रियों की वेष-भूषा। शैलबाला लड़कियों से साड़ियों के विषय पर विशेषज्ञ बनी हुई उन्हें मदरासी, चन्देरी, छपी हुई, जोर्जेट, शिफोन आदि का महत्व बता रही थी। वह इस समय वियोगिनी अवश्य थी परन्तु जीवन के रसास्वादन की चाहना भी उसमें

भरी हुई थी। मुझे इस विषय से कोई रुचि नहीं थी। मैं अलक-नन्दा के कल्लोल और गुञ्जन की ओर झुक गया।

अगले दिन प्रातःकाल ही हम लामबगढ़ से चले। वहाँ से हनुमान चट्टी तक का मार्ग मानो स्वर्गभूमि है। चारों ओर आकाशभेदी पर्वत-शिखर हैं, नीचे अलकनन्दा और लताओं, वृक्षों तथा नाना प्रकार के सुगन्धित फूलों से भरा अति रमणीक क्षेत्र। इस सौन्दर्य की छटा का वर्णन करना सरल नहीं है। हम सब स्तब्ध अवस्था में उस मनमोहक और सुन्दर क्षेत्र से पार हुए। हनुमान चट्टी के पश्चात् कठोर चढ़ाई आरम्भ हुई, जो बद्रीनाथ नगरी के निकट ही समाप्त हुई। हम बद्रीनाथ पहुँचे। थोड़े समय तक विश्राम किया। उसके बाद गंधक के तप्त जल-कुण्ड में स्नान किया और भोजन करके सब विश्राम करने लगे।

सायंकाल के समय हम प्रथम बार मन्दिर में गए। उस समय पट बन्द थे। भगवान् की प्रतिमा के दर्शन नहीं हुए, परन्तु मैंने मन्दिर के प्राङ्गण में एक तरफ बैठकर मानसिक पूजन किया। हर स्थान का एक पृथक् वातावरण होता है। इस मन्दिर के वातावरण में अद्भुत विशेषता प्रतीत हुई, मानों तीनों काल—भूत, भविष्य, वर्तमान सिमट कर एक हो रहे हों।

बद्रीनाथ की शयन-आरती का दृश्य विलक्षण था। सौभाग्य से हम सब गर्भ-द्वार के सम्मुख ही बैठे थे। हमारे वाम और दक्ष-दिशाओं में बैठे ब्राह्मण मधुर स्वर से वेदों की ऋचाओं का पाठ कर रहे थे। गर्भक्षेत्र के अन्दर रावल ने आरती की, फिर एक-एक करके भगवान् के शृङ्गार पदार्थों को उतारा। अन्त में मूर्ति पर केवल चन्दन का ही आवरण रह गया था। भगवान् के उस रूप ने मुझे कम्पित कर दिया। यही दिखा जैसे साक्षात्

नारायण बैठे हों। ऐसी तेजपूर्ण और विलक्षण प्रतिमा मैंने और कहीं नहीं देखी। विष्णु के रूप में नारायण समस्त जगत को धारण किए हुए लगे। जन्म-जन्मान्तरों के सुसंस्कारों के फल-स्वरूप इस दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरा अनुमान है कि हम सबको ऐसा ही अनुभव हुआ होगा।

हम बद्रिकाश्रम में दो दिन ठहरे और कई बार बद्रीनाथ के दर्शन किए। तीसरे दिन वहाँ से चले और मार्ग में पाण्डुकेश्वर, जोशीमठ, कर्णप्रयाग ठहरते हुए ऋषिकेश पहुँचे। शैलबाला वहीं ठहर गई। उसने कहा कि 'मैं अभी कुछ समय और ऋषिकेश और हरिद्वार रहूँगी, फिर कलकत्ता जाऊँगी।' हम हरिद्वार आ गए और वहाँ दो दिन ठहर कर पुनः प्रयाग वापिस आए। इस यात्रा में हमें लगभग १०० मील की पैदल यात्रा करनी पड़ी।

(३)

मैं अपने नित्य के जीवन में व्यस्त था परन्तु मुझे और मुझसे कुछ अधिक ही राज को बहुधा शैलबाला का ध्यान आता था। उसके पत्र भी यदा-कदा कलकत्ता से आए, जिससे यही ज्ञात हुआ कि उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और वह तपस्विनी ही बनी हुई है। आशुतोष और माधवी दोनों साथ रह रहे हैं और आशुतोष शैलबाला से पूर्ण-रूपेण विमुख था। १९६३ का शरद्काल बीत गया। राजलक्ष्मी का विवाह होनेवाला था। राज उसके प्रबन्ध में व्यस्त थीं। अप्रेल में शैलबाला का पत्र आया—

घनश्याम धर्मशाला
कालीघाट
कलकत्ता
१५ अप्रेल १९६४

मेरे प्रिय भय्या,

सादर नमस्कार। आपका और भाभी का निमन्त्रण पत्र मिला। प्रिय राजलक्ष्मी के मङ्गल विवाह के उत्सव में आने की मुझे कितनी अभिलाषा है, आपसे कैसे कहूँ, परन्तु इस समय मैं जिस स्थिति में हूँ, उसमें रहकर मुझे न जाने अपनी कितनी अभिलाषाओं को हृदय ही में दबाकर रखना पड़ेगा। विलास, राजलक्ष्मी और दामिनी—ये तीनों मुझे कुमुद के समान प्रिय हैं। मुझे खेद है कि राजलक्ष्मी को उसके घर भेजते समय मैं स्वयं उसे आशीर्वाद न दे सकूँगी। मैं आपको कैसे बताऊँ, विवाह के दिवसों में मेरे प्राण आप सबमें लगे रहेंगे। राजलक्ष्मी को मेरी ओर से प्यार कहियेगा। दयामय भगवान उसे सर्वदा सुखी और सौभाग्यवती रखे। भाभी से कहिएगा, मुझे विवाह का सब हाल विस्तार से लिखें। मुझे उनके पत्र की प्रतीक्षा रहेगी। विवाह के समय के चित्र भी मुझे भेजिएगा। इस पत्र में अपना हाल क्या लिखूँ। वही स्थिति अब भी है, जिसका वर्णन मैं अपने पिछले पत्र में कर चुकी हूँ।

मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि आप और भाभी गंगोत्री जा रहे हैं। मैं हरिद्वार पहले ही पहुँच जाऊँगी। आपसे वहीं मिलूँगी और फिर आपके साथ गङ्गोत्री चलूँगी।

आपकी दुखी बहिन
शैल

राजलक्ष्मी का विवाह २८ मई को सम्पन्न हुआ। विवाह-सम्बन्धी कार्यों से मैं थक गया था और शीघ्र ही प्रयाग से बाहर जाना चाहता था। ३१ मई १९६४ को राज, दामिनी और मैंने हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया और १ जून को प्रातःकाल

वहाँ पहुँच गए। स्टेशन पर ही शैलबाला हमारी प्रतीक्षा कर रही थी। साल भर में उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था, परन्तु उसके मुख की आभा ने उसे आकर्षक बना रखा था। पहिले से मुझे उसका वर्ण कुछ अधिक गोरा लगा। उसकी काया साधारणतः स्त्रियों में लम्बी ही थी। उसकी काठी भी चौड़ी और पुष्ट थी। परिव्राजिकीय जीवन ने उसकी चाल में स्फूर्ति उत्पन्न कर दी थी। हल्के गेरुए रङ्ग की साड़ी ने उसमें वैराग्य की झलक उत्पन्न कर रखी थी, परन्तु उसके साथ ही साथ उसके मुख और नेत्रों में वह कान्ति थी, जो एक युवक योगी में बहुधा आ जाती है। उसने हमें देखकर प्रसन्नता से हमारा अभिनन्दन किया। उसने राज के चरण छुए और मेरे पैरों पर भी हाथ रखने की चेष्टा की, परन्तु मैंने उसे ऐसा करने से रोक दिया। उसने राज और दामिनी से बड़े प्रेम से आलिंगन किया। इधर-उधर की बातें हुईं और हम सब हर की पैढ़ी पर आए। वहाँ हमने स्नान किया और शीघ्र ही वहाँ से मोटर द्वारा चलकर ऋषिकेश पहुँचे। वहाँ भी अधिक नहीं ठहरे और आगे बढ़ गए। मार्ग में कई स्थानों पर रुकना पड़ा। कारण यह था कि सड़क पर एक ओर ही मोटरें और लारियाँ चलती थीं। बीच में ऐसे पड़ाव थे, जहाँ दूसरी ओर से मोटरों के आने की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। टेहरी से हमारा मार्ग गङ्गा के साथ-साथ हो गया। सायंकाल के पाँच बजे हम उत्तर काशी पहुँचे और वहीं ठहरे।

शैलबाला ने बड़े कौतूहल से राजलक्ष्मी के विवाह का हाल पूछा। राज ने उसे सब विस्तार से बताया। कपड़ों और आभूषणों की व्याख्या तो उसने बड़ी रुचि से सुनी। तपस्विनी का जीवन धारण किए हुए भी उसके नारी-स्वभाव में उदासीनता नहीं आई थी। उसने राज से कहा—'मैंने राजलक्ष्मी को अभी कुछ नहीं दिया है। जब मैं अपने घर पुनः जाऊँगी, तो मैं उसे

अपने पास बुलाऊँगी और उसी अवसर पर मुझे जो देना है, उसे दूँगी।

इसके पश्चात् दामिनी और शैलबाला में रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के विषय में बड़ी देर तक रोचक वार्तालाप होता रहा। दूसरे दिन प्रातःकाल हम उत्तरकाशी से मोटर द्वारा प्रस्थान करके सायंकाल झाला पहुँचे और रात्रि भर वहीं ठहरे। वहाँ से मोटर झाला के पुल तक गई और उसके पश्चात् पग-यात्रा आरम्भ हुई। जाह्नवी के तट के निकट चलते-चलते हम दो बजे दिन को हरसिल पहुँचे और वहीं रात्रि काटने के लिए रुके।

सायंकाल के समय मैं और शैलबाला टहलने निकले। राज और दामिनी थकी हुई थीं। वे डाकबँगले ही में रहीं। हरसिल गङ्गा के तट पर रमणीक ग्राम है। वहाँ के सेव विख्यात हैं। वहाँ कई झरने पर्वत-शिखरों से गिर कर गङ्गा में मिलते हैं। शैलबाला को गङ्गा की धारा ने मुग्ध कर रखा था। वह उसकी ओर देखती और पुनः विचारों के स्रोतों में लीन हो जाती। हम दोनों ही को गङ्गा का दृश्य मौन बनाए हुए था। स्तब्धता को तोड़ती हुई वह बोली—'भय्या, मेरा हृदय कह रहा है कि गङ्गा ने मेरी प्रार्थना सुनी है और वे ही मेरा दुख दूर करेंगी।'

मैं मौन रहा।

'आप जानते हैं, मैंने देवी-देवताओं से कितनी विनती की है। कलकत्ता में महाकाली से, काशी में विश्वनाथ से, केदारनाथ में सदाशिव से और बद्रिकाश्रम में नारायण से। मैं जानती हूँ, मेरी विनती और तपस्या व्यर्थ नहीं होगी। यह भी मैं समझती हूँ कि मेरे संस्कार ही मुझे पीड़ा दे रहे हैं, परन्तु अब मेरी

अन्तरात्मा कहती है कि मेरे जीवन के अन्धकार का आवरण बहुत शीघ्र ही हटनेवाला है और पुनः इसमें नवप्रभात का दिग्दर्शन होगा।'

वह कुछ रुक कर फिर बोली—'मैंने देवी-देवताओं से कितनी प्रार्थना की है, आप स्वयं जानते हैं। मेरे अन्तःकरण में यही उत्तर मिला है कि जैसे भगीरथ और समस्त मानवों का कल्याण जाह्नवी ने किया है, अब वे ही मेरे मनोरथ को पूर्ण करेंगी।'

मैं फिर भी मौन रहा। उसने कुछ उत्तेजित होकर कहा—'भय्या, आप चुप क्यों हैं? क्या मैं असत्य बातें कह रही हूँ?'

उस समय शैल के लिए मेरे हृदय में करुणा की धारा उसी वेग से प्रवाहित थी, जैसे गङ्गा की धवल धारा। मैंने अपने आवेश के भाव को दबाते हुए कहा—'शैल, तुमने जो कुछ कहा है, वह योगयुक्त होकर कहा है। वह वास्तव में अन्तरात्मा की वाणी ही है, जो कभी भी असत्य नहीं हो सकती। त्रिपथगा निश्चय ही तेरा कष्ट दूर करेगी। तू मेरी सहोदरा-रूपिणी है, परन्तु मैं इस समय तुझे भारतीय सती नारी के रूप में देख रहा हूँ। सावित्री ने तो मृत्यु को जीता था! तेरी तपस्या कैसे निष्फल हो सकती है। सती की वाणी त्रैलोक्य को हिला सकती है। तू अवश्यमेव पुनः अपने घर की राजरानी बनेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है।'

मेरे नेत्रों में अश्रु-बिन्दु आ गए। शैल ने मेरा हाथ पकड़ लिया। उसके मुख से 'भय्या, भय्या, भय्या' ही निकला। वह

अधीर होकर रोने लगी। सूर्यास्त हो चुका था। हम दोनों धीरे-धीरे चलकर डाक बँगले वापिस आए।

भोजन के समय राज ने शैल से कहा—'जब तुम घूमने गई थीं, तो दामिनी ने एक चित्र बनाया, उसे देखो।'

शैल ने कौतूहल से कहा—'दामिनी चित्रकार भी है? उसमें कला का भाव तो है ही परन्तु यह मुझे नहीं ज्ञात था कि वह चित्रकार भी है! कहाँ है—मैं देखूँ।'

दामिनी ने कुछ संकोच किया, परन्तु शैल के आग्रह से वह उठी और दो चित्र लाई। एक तो उसने अभी कुछ समय पूर्व हरसिल में बनाया था और दूसरा लामबगढ़ में।

शैल फड़क उठी—'अरे, ये तो बड़े सुन्दर हैं! दामिनी, जब तुम मेरे घर आओगी, तो मैं भी तुम्हें अपने बनाए हुए चित्र दिखाऊँगी, परन्तु तुम्हारी कला मेरी कला से अधिक निपुण है।'

फिर तीनों महिलाएँ चित्रकला पर वार्तालाप करने लगीं। मैं थक गया था। उन तीनों को छोड़कर मैं अपने कमरे में आकर लेट गया।

दूसरे दिन हमारी पगयात्रा आरम्भ हुई। गङ्गा के तट के साथ-साथ ही मार्ग था। एक ओर गङ्गा की धवल धारा, चारों ओर सघन वन और उसको घेरे हुए हिमाच्छादित पर्वतमालाएँ थीं। गङ्गा का कल्लोल नृत्य ऐसा प्रतीत होता था, जैसे उसकी धारा हृदय ही में प्रवाहित हो। थोड़े समय के पश्चात् मुझे ऐसा आभास होने लगा, जैसे मेरे मातृपक्ष के पितृगण मेरे पीछे-पीछे चल रहे हैं। मैं अपने कुल का पहिला व्यक्ति था, जो गङ्गोत्री जा रहा था। कभी-कभी मैं पीछे मुड़कर देखता था कि क्या

वास्तव में कोई मेरे पीछे-पीछे आ रहा है। चाहे मुझे पीछे कुछ न दिखा हो, परन्तु मुझे यही प्रतीत हो रहा था कि बहुत सी छायाएँ मेरे पीछे-पीछे चल रही हैं। मैंने राज से कहा कि 'आप 'गंगोत्री पहुँच कर जब गंगा में स्नान करें, तो अपने पितरों का स्मरण करके डुबकियाँ लगाइएगा।' शैल ने भी मेरी बात सुनी। वह कुछ बोली तो नहीं, परन्तु मुझे ऐसा लगा कि उसे भी अपने पितृगणों का स्मरण आ गया।

११ बजे के लगभग हम जांगला का पुल और नेहलङ्ग और गङ्गा के सङ्गम को पार करके भैरोघाटी के निकट पहुँचे। वहाँ से कठोर चढ़ाई आरम्भ हुई और आधे मील ऐसे ऊपर जाना पड़ा, जैसे सीढ़ियों पर ही चढ़ना हो। उस चढ़ाई ने हम सबकी दुर्दशा कर दी। दो पग चलते थे, फिर रुकते थे और फिर शरीर को घसीटते हुए ऊपर बढ़ते थे। किसी न किसी प्रकार से वह दारुण चढ़ाई पार हुई और हम भैरोघाटी के रमणीक स्थान पर पहुँच गए। वहाँ के सुन्दर डाक बँगले में विश्राम किया। वहाँ भैरव के दर्शन किए और सायंकाल डाक बँगले के आस पास ही ठहरे।

सन्ध्या के बाद शीत की अधिकता हो गई थी। कमरे में आग जला कर हम चारों बड़ी देर तक बातें करते रहे। राज और मैं दामिनी और शैल की बातें सुनते रहे। दोनों में गङ्गा के माहात्म्य की व्याख्या हो रही थी। शैल को संस्कृत का अच्छा ज्ञान है। उसने कुमार-सम्भव के श्लोक सुनाने आरम्भ किए और गङ्गा अवतरण की गाथा बड़े रोचक शब्दों में सुनाई। हम सबसे उसकी घनिष्ठ आत्मीयता हो गई थी। मुझे उसकी बातों से ज्ञात हुआ कि उसमें कितना विनोद का भाव है। वह स्वयं हँसती थी और सबको अपनी रोचक बातों से हँसाती थी। चाहे साहित्यिक

विषय हो, चाहे सामाजिक, उसका दृष्टिकोण एक नवीनता लिए हुए था। राज और दामिनी के आग्रह से उसने बड़े ही कोमल और मधुर स्वर में दो बार गाया। मैं उसे देखकर यही सोचने लगा कि 'मनुष्य की प्रकृति भी कैसी होती है! ऐसी लावण्यमयी को आशुतोष ने कैसे छोड़ा!'

उन तीनों को आपस में बातें करते हुए छोड़कर मैं अपने कमरे में आकर लेट गया। रात्रि में बड़ी गहरी निद्रा आई। बड़ी देर के बाद आँख खुली। चलने में विलम्ब हुआ और लगभग आठ बजे हम भैरोघाटी से चले। गङ्गोत्री वहाँ से ६॥ मील है। चढ़ाई भी अधिक क्लेशदायक नहीं थी। गङ्गा के किनारे-किनारे हम चल रहे थे। नीचे गङ्गा बड़े वेग से चट्टानों और संकुचित मार्गों को काट कर बह रही थी। चार मील चलने के पश्चात गङ्गा तुलसी के दर्शन आरम्भ हुए। इसकी पत्तियों में मधुर सुगन्ध होती है। चारों ओर इसके झाड़ फैले हुए थे। पत्तियाँ ही मानो सुगन्धित पुष्प होती हैं।

११ बजे के लगभग हम गंगोत्री के डाक बँगले में पहुँच गए। उसके निकट कई योगाश्रम हैं और एक तरफ़ गङ्गा और दूसरी ओर केदार गङ्गा बहती है। केदार गंगा और गंगा का सङ्गम भी डाक बँगले के नीचे है। मैंने राज को मना किया था कि 'आज आप चलकर आई हैं, इस समय स्नान न करिएगा—कल प्रातःकाल गंगा-स्नान करेंगे।' परन्तु तीनों महिलाएँ नहीं मानीं, और पहुँचने के थोड़ी ही देर के बाद उन्होंने गङ्गा में डुबकियाँ लगा लीं। फलस्वरूप राज और दामिनी के गले जकड़ गए। शैल का शरीर अधिक कठोर था, उसे कुछ भी न हुआ।

सायंकाल हम सब केदार गङ्गा को पार करके उसके निकट ही स्वामी कृष्णाश्रम की कुटिया में गए। उनकी ख्याति मैंने

पहिले ही सुनी थी, परन्तु उससे उनको बहुत अधिक महान् पाया। उनकी आयु उस समय लगभग ११६ वर्ष की होगी। पूर्ण दिगंबर अवस्था में रहते हैं। उनकी कुटिया ६ फुट लम्बी और ४ फुट चौड़ी होगी। उसी में सूखी घास ही उनकी शैय्या है। कुटिया के तीन ओर दो फुट चौड़ा बरामदा है। उसमें वे प्रातःकाल और कुछ देर के लिए सन्ध्या के समय बैठ जाते हैं। उनका अधिकांश समय कुटिया ही में पद्मासन या सुखासन में बैठे बीतता है। पास ही माता जी की कुटी है। वे ही उनके भोजन इत्यादि की व्यवस्था करती हैं और समय पड़ने पर दूसरों से उनकी बात कहती हैं। स्वामीजी मौन रहते हैं। जब कुछ कहना चाहते हैं, तब अपने दाहिने हाथ की उँगली से बाएँ हाथ की हथेली के पीछे लिखते हैं, जिसे माता जी को समझने का अभ्यास हो गया है और वे ही बताती हैं कि स्वामी जी क्या कह रहे हैं। मैं स्वामीजी के निकट बहुत समय तक बैठा। उनसे साधना-सम्बन्धी कुछ जिज्ञासाओं का समाधान भी करवाया। फिर हम सब माता जी की कुटी में आ गए। उन्होंने हमें चाय पिलाई। राज ने माता जी को शैल का हाल बताया और कहा कि 'इन्हें महाराज का आशीर्वाद दिलवाइए, जिससे इनका कष्ट दूर हो।'

माता जी हँस के शैल से कहने लगीं—'जब तुम एक बार संसार के प्रपञ्च से दूर हुई हो, तो उसमें फिर अपने आपको डालने के लिए क्यों उतावली हो रही हो?'

शैल बोली—'क्या गृहस्थ धर्म प्रपञ्च है? क्या अपने विमुख हुए पति को पुनः पाने की चेष्टा अधर्म है अथवा उसके लिए प्रयत्न करना अनधिकार कृत्य है?'

'नहीं, तुम मेरा अभिप्राय नहीं समझीं। यदि तेरी यही आकांक्षा है कि तू गृहस्थ जीवन में रहे, तो ऐसी स्थिति में तेरी चेष्टा उचित ही है।'

शैल बोली—'मुझे स्वामी जी का और आपका आशीर्वाद चाहिए।'

माता जी ने हँसते हुए कहा—'अधिक उतावली न हो। मैं तुम्हारे सम्बन्ध में महाराज से कहूँगी।'

स्वामी कृष्णाश्रम की कुटी से हम गंगा का पुल पार करके गंगा मन्दिर गए। आरती का समय हो रहा था और कुछ समय के बाद वह आरम्भ हुई। हिमालय के गगनभेदी और निर्मल श्वेत हिम से ढँके हुए पर्वत-शिखरों के मध्य में गंगा का आरती रोमाञ्चित कर रही थी। मन्दिर उसी स्थान पर है, जहाँ भगीरथ ने गंगा अवतरण के लिए घोर तपस्या की थी और यहीं सदाशिव ने गंगा को अपनी जटाओं में आश्रय दिया था। उस दैवी दृश्य की कल्पना मात्र ही हृदय को हिलाने के लिए पर्याप्त था। आरती के समय शैल का रूप विलक्षण सौम्यता लिए हुए था। वह गंगा के ध्यान में ऐसी मग्न थी, जैसे अपनी प्रार्थना से गंगा को हिला रही हो।

आरती समाप्त हुई। हम सब प्रसाद लेकर डाक बँगले वापिस आए। नित्य की तरह मैं जल्दी ही अपने कमरे में आकर लेट गया।

दूसरे दिन हम सब गंगा-स्नान करने गए। जल इतना ठण्डा था कि उसमें प्रवेश करते ही शरीर कटा सा जाता था। मैंने किसी तरह पहिली डुबकी लगाई और फिर अपनी स्वर्गीया स्त्री, स्वर्गीया बहिन, माता, दादी, पर दादी और उनसे ऊपर की पीढ़ियों का ध्यान करके एक एक के लिए डुबकी लगाई। फिर एक एक का नाम लेकर मैंने सबको तर्पण में समस्त गंगा जिला

दी। यदि इस तर्पण का कुछ भी महत्त्व है, तो इनमें से अब किसी को भी जल क्या गंगोदक का कभी अभाव नहीं होगा। मेरी देखा-देखी राज और शैल ने भी यही किया। गंगा से निकल कर मैंने तट ही पर आसन बिछाकर सन्ध्या की। मुझे इसमें आधे घण्टे से अधिक समय लगा! तीनों महिलाएँ प्रतीक्षा कर रही थीं कि मेरी सन्ध्या समाप्त हो। ठण्डे जल में स्नान करके सबके मुख दमक रहे थे। शैल का मुख भी दीप्तमान था। उसने हँसते हुए मुझसे कहा—'भय्या, मुझे नहीं ज्ञात था कि आपका पूजा इतना लम्बा होता है! आप भी किसी महात्मा से कम नहीं हैं। यह अवश्य है कि आप छद्मवेश में रहते हैं। मैंने भाभी से आपके सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने कहा, मुझसे क्यों प्रश्न करती हो। अपने भाई से क्यों नहीं कहती हो। वे ही उत्तर देंगे। अब मुझे यह दिखता है कि आप ही से मेरी कार्य-सिद्धि हो जाएगी। मैं दूसरे महापुरुषों के पास क्यों जाऊँ?'

'यह क्या कहती हो! मुझ जैसे मूर्ख की तुलना महापुरुषों से करती हो?'

'छिः छिः! आप अपने लिए मूर्ख जैसा कुशब्द न कहिए। आपका रूप मैं भी अब कुछ कुछ समझ रही हूँ।'

मुझे हँसी आ गई और मैंने शैल को कोई उत्तर नहीं दिया। हम सब मन्दिर में आए और गंगा के दर्शन करके स्वामी कृष्णाश्रम की कुटी में गए। स्वामी जी बाहर ही बैठे हुए थे। वहीं माता जी भी थीं। राज ने स्वामी जी से बहुत से प्रश्न किए, जिनका उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से उत्तर दिया। फिर उन्होंने शैल का हाल बताया। स्वामी जी उसकी गाथा सुन कर हँसे। शैल से रहा नहीं गया।

उसने बहुत ही कातर भाव से कहा—'महाराज, क्या आप मुझे आशीर्वाद नहीं दीजिएगा ?'

स्वामी जी ने अपने हाथ हिलाकर संकेत किया कि 'ऐसा मत समझ।' फिर उन्होंने लिखने की मुद्रा में कहा 'दुखी मत हो। गंगा ही शीघ्र तेरा कष्ट दूर करेगी।'

यह सुन कर शैल प्रसन्न हो गई। मैंने स्वामी जी से कुछ नहीं कहा। मुझे यही आभास हुआ कि जो जो प्रश्न मेरे विचार में आए, उनका स्वयं ही समाधान हो गया। स्वामी कृष्णाश्रम जैसे महात्मा का साक्षात्कार ही बहुत कुछ है।

हम सबने डाकबँगले में आकर भोजन किया। राज और मैं तो वहीं विश्राम करने लगे, परन्तु दामिनी और शैल महात्माओं के दर्शन के लिए चली गईं। तीन बजे के लगभग राज और मैं स्वामी कृष्णाश्रम के आश्रम में गए। हम दोनों माता जी के पास बैठ गए। राज और माता जी में बहुत घनिष्ठता हो गई थी। वे अपना और स्वामी जी का हाल सुनाने लगीं। फिर उन्होंने मुझसे कहा कि 'महाराज अपनी कुटी में अकेले हैं। तुम उनके पास जाओ।' मैं महाराज की कुटी के पास पहुँचा और उसके अन्दर चला गया। महाराज पद्मासन लगाए हुए बैठे थे। कुछ क्षणों ही में मैं समझ गया कि मुझे अन्दर नहीं आना था। उस समय महाराज समाधि की स्थिति में थे और मुझे अनुमान हुआ कि उनकी कुण्डलिनी सहस्रार में है। मैं तुरन्त ही बाहर आया और माता जी की कुटिया में आ गया।

माता जी के पूछने पर मैंने कहा कि 'इस समय महाराज मूलाधार में नहीं, सहस्रार में हैं।' माता जी हँसने लगीं। माता

जी के पास कुछ समय बैठ कर हम वापिस डाकबँगले आए। शैल और दामिनी भी आ गईं। उन्होंने कई महात्माओं के दर्शन किए। दोनों ही बहुत प्रसन्न दिखीं।

हम सब पुनः सायंकाल की आरती में सम्मिलित होने के लिए मन्दिर गए और बहुत देर तक वहाँ रहे। वहाँ से हटने को मन नहीं चाहता था। मुझे बैठे बैठे आदि शङ्कराचार्य की महानता का ध्यान आया। कितनी अल्प आयु में उस काल में जब यात्रा की कोई सुविधा नहीं थी, उन्होंने समस्त भारत का भ्रमण किया था और बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री ऐसे दुर्गम स्थानों में मन्दिरों की स्थापना की थी! वे किस प्रकार से यह सब करने में समर्थ हुए! मैं यही सोचकर आश्चर्य से चकित हो रहा था।

बड़ी देर के बाद हम सब डाकबँगले आए। मैं अपने क्रमानुसार भोजन के पश्चात शीघ्र ही अपने कमरे में चला गया परन्तु राज, शैल और दामिनी बहुत देर तक वार्तालाप करती रहीं।

दूसरे दिन हमने वापिस जाने की तय्यारी की। सामान बाँधा और गंगा स्नान किया। फिर अपनी ओर से मन्दिर में गंगा का पूजन और आरती की। शैल ने भी अपनी ओर से पूजन किया। फिर प्रसाद लेकर मन्दिर ही से हमने भैरो-घाटी के लिए प्रस्थान किया। जैसे आए थे, उसी तरह से भैरो-घाटी और हरसिल में ठहरते हुए हम उत्तर काशी वापिस आए और वहाँ रात्रि भर ठहर कर प्रातःकाल वहाँ से प्रस्थान करके सायंकाल ऋषिकेश आ गए। शैल वहीं रह गई, मैं राज और दामिनी के साथ मसूरी चला गया।

(४)

प्रयाग आने के पश्चात बहुत समय तक शैल का कोई पत्र नहीं आया। मुझे और राज को उसका हाल जानने की चिन्ता थी। राज ने मुझसे कई बार कहा कि 'आप शैल को पत्र भेजिए।' मैंने यही कहा कि 'आप स्वयं क्यों नहीं उसे लिखतीं?' गंगोत्री से वापिस आए कई मास बीत चुके थे। मैं उसे लिखने का सोच ही रहा था कि उसका पत्र मिला—

घनश्याम धर्मशाला
कालीघाट
कलकत्ता
१२ अक्तूबर १९६४

मेरे प्रिय भय्या,

सादर नमस्कार। जब से ऋषिकेश से यहाँ आई हूँ, मैंने कई बार विचार किया कि आपको अथवा भाभी को पत्र लिखूँ। परन्तु सोचकर ही रह जाती थी और कई मास बीत गए। आपको लिखती भी क्या! आशुतोष का पहिले जैसा हाल था। अब कुछ आशा की झलक आने लगी है। मैं स्वयं तो उसके पास गई नहीं और जाती भी कैसे! गङ्गोत्री में एक दिन आपकी अनुपस्थिति में भाभी ने मुझसे कहा कि 'तुम आशुतोष के पास जाकर देखो कि उसका क्या हाल है।' मैंने उनसे तो कुछ नहीं कहा, परन्तु उनका यह कहना मुझे अच्छा नहीं लगा। क्या वे नारी-हृदय की भावना नहीं जानतीं? मैं जब उनके पास थी, तो वे पूर्णरूपेण मेरे थे, समस्त घर भी मेरा था। जो वस्तु पूर्ण रूप से अपनी हो, उसका केवल एक लघु अंश या उसकी छाया मात्र क्या मुझे सन्तुष्ट कर सकती है? ऐसे मिलन

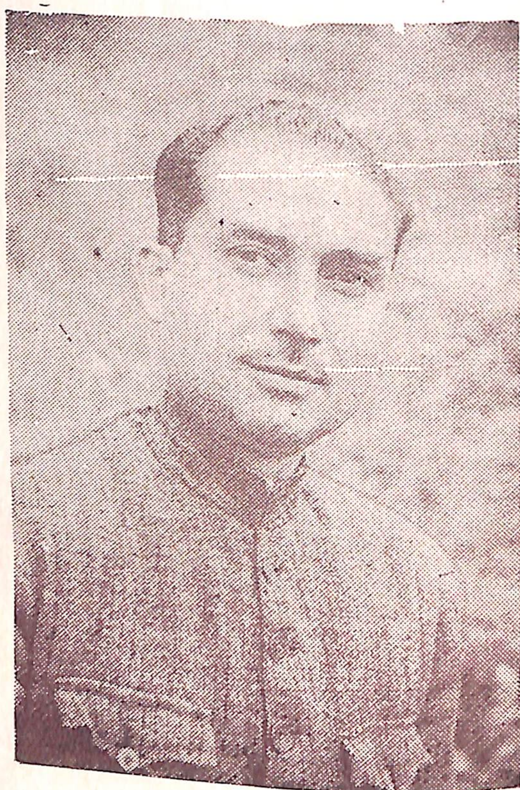
से तो मेरी वेदना और बढ़ेगी। मैं अभी तक आशुतोष से दूर ही रही हूँ। अब यह अवश्य है कि मेरा एक गुप्तचर मुझे सब सूचना दे रहा है। मेरा एक पुराना सेवक—उसका नाम श्यामू है—पिछले मास मुझे काली जी के मन्दिर में मिला था। मुझे देख कर उसे पुराने समय की स्मृति जागृत हो गई। उसने बड़ी विनम्रता से मेरे साथ सहानुभूति प्रकट की और आशुतोष का हाल बताया। मुझसे रहा नहीं गया। मैंने उससे कहा कि 'तू मुझसे तीसरे-चौथे दिन मिल लिया कर और मुझे घर का सब हाल बता दिया कर।' उसने स्वीकार कर लिया। अब जो कुछ भी वहाँ होता है, उसका सम्पूर्ण हाल मुझे मिल जाता है। इस समय मैं आपको अधिक नहीं लिखूँगी। शीघ्र ही अगले पत्र में आपको समस्त स्थिति से सूचित करूँगी।

भय्या, मैं कहना तो नहीं चाहती थी, परन्तु बिना लिखे रहा नहीं जाता। आप वास्तव में मेरे लिए नारायण का रूप बन गए हैं। जब भी मुझे विषाद की गरिमा घेर लेती है, तो उस समय मुझे यही प्रतीत होता है कि आप सामने खड़े हैं और मुझसे कह रहे हैं कि 'शैल, अधीर मत हो। शीघ्र ही तेरे समस्त कष्ट दूर होंगे।' इसी से मुझे सान्त्वना मिलती है, और मैं समझती हूँ कि अन्त में विजय मेरी ही होगी। भवानी भाभी का सुहाग सदा अटल रखें और आपका आशीर्वाद मुझे सर्वदा प्राप्त होता रहे। सबको यथा योग्य।

आपकी

शैल

शैल का पत्र जब मुझे मिला, उन दिनों मैं बहुत ही व्यस्त था। मैंने उसे संक्षिप्त पत्र भेजा और राज से कहा कि 'उसे पत्र भेजती रहा करिये।' ८ दिसम्बर १९६४ को मेरे ज्येष्ठ पुत्र राज-



लेखक (पण्डित शिवनाथ काटजू)
सन् १९४८ में

गोपाल का लखनऊ में विवाह था। राज ने शैल को निमन्त्रण पत्र भेजा था। उनके नाम शैल का निम्नलिखित पत्र आया—

कलकत्ता
२० नवम्बर १९६४

मेरी अति प्रिय भाभी,

आपका स्मरण करते ही मैं आपके स्नेह के सागर में डूब जाती हूँ। आपको अधिक क्या लिखूँ। आपने यही निश्चय कर लिया है कि मेरे ग्रहण-काल में ही आपको अपने यहाँ सब मङ्गल कार्य रचने हैं। मेरी इस समय ऐसी दशा नहीं है कि यहाँ से निकलूँ। मैं चाहते हुए भी इस अवसर पर आपके पास नहीं आ सकती। आप समझ सकती हैं कि मेरा मन और हृदय आपके साथ ही रहेगा। अम्बिका यह शुभ कार्य अच्छी तरह से सम्पन्न करें। वर और वधु सर्वदा प्रसन्न रहें। भय्या के लिए पत्र भेज रही हूँ, उन्हें दे दीजिएगा।

आपकी
शैल

मुझे जो उसने पत्र भेजा था, उसमें लिखा था—

कलकत्ता
२०-११-६४

मेरे भय्या,

सादर प्रणाम। इन दिनों घटना-चक्र कुछ तीव्रता से चल रहा है और कुछ अनुकूल ही प्रतीत हो रहा है। श्यामू मुझे

बराबर सूचना दे रहा है। आशुतोष की स्थिति शोचनीय हो रही है। उसकी बैरिस्ट्री का कार्य गिरता जा रहा है। उसकी आय लुप्तप्राय सी हो गई है। अब उसकी यह सामर्थ्य भी नहीं रही है कि अपने घर को चला सके। श्यामू का और दूसरे सेवकों का वेतन भी समय से देने में वह असमर्थ है। माधवी ने घर में जो कुछ भी था, उसे साफ़ कर दिया है। मेरे कुछ आभूषण वहाँ रह गए थे, उन्हें भी माधवी ने ले लिया है। पहिले उसने अपना काम बन्द कर दिया था। अब वह फिर काम पर जाने लगी है। अब उसके मित्र भी घर में आने लगे हैं। इस पर कई बार उसमें और आशुतोष में कहा-सुनी भी हुई। श्यामू कह रहा था कि कोई धनी व्यक्ति है। उसके यहाँ काम के बहाने माधवी जाती है और उससे माधवी की घनिष्ठता बढ़ती जा रही है। वह स्वयं माधवी से मिलने घर पर आया करता है। उसका आना आशुतोष को बहुत खलता है, परन्तु उसके कहने पर भी माधवी नहीं मानती। श्यामू ने मुझसे यह भी कहा कि आशुतोष दुर्बल होता जा रहा है। उसके भोजन की भी अब माधवी को चिन्ता नहीं रही। आशुतोष को आर्थिक क्लेश है और इसी कारण उसकी और दुर्दशा हो रही है। भय्या, आप जानते हैं कि मेरे पास अपना निजी धन है। वह किस दिन काम आएगा और वह किसके लिए है। अब कभी-कभी मैं सोचती हूँ कि किसी तरह से अपने धन ही से आशुतोष का क्लेश दूर करूँ। इस सम्बन्ध में आप क्या कहते हैं? मुझे शीघ्र उत्तर दीजिएगा।

आपकी
शैल

मैंने उसके पत्र का तुरन्त उत्तर दिया:—

प्रयाग
२५ नवम्बर १९६४

प्रिय शैल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं इस समय अपने कार्य में बहुत उलझा हुआ हूँ। इसलिए अधिक नहीं लिखूँगा। अभी कुछ दिनों और तुम चुपचाप बैठी रहो। यह समय आशुतोष के प्रति उदारता के प्रदर्शन का नहीं है। उसके दुर्भाग्य का पात्र भर रहा है। जब वह पूर्ण हो जाएगा, उसी समय तुम्हें विजय प्राप्त होगी। इस समय तुमने उसकी किञ्चित मात्र भी आर्थिक सहायता की, तो वह तुम्हारे लिए विष बन जाएगी। मैं पुनः कहता हूँ कि धैर्य के साथ समस्त लीलाएँ देखती जाओ और थोड़े दिन और शांत होकर बैठी रहो, शेष फिर।

शुभाकांक्षी
भय्या

मेरी उन दिनों की उलझनों में कमी नहीं हुई। ८ दिसम्बर १९६४ को लखनऊ में मेरे ज्येष्ठ पुत्र राजगोपाल का विवाह था। उसके कुछ सप्ताह के पश्चात् राजलक्ष्मी प्रयाग आई। उसके प्रसव का काल दूर नहीं था। घर में अतिथि भी आए हुए थे। इस काल में मैं शैल को पत्र न भेज सका। उसके एक दो पत्र राज के पास आए थे, परन्तु उनमें उसने कोई विशेष बात नहीं लिखी थी। मार्च १९६५ में मेरे नाम उसका पत्र आया :—

कलकत्ता
१८ मार्च, १९६५

मेरे प्रिय भय्या,

सादर प्रणाम। कल भाभी का पत्र मिला। मेरी राजलक्ष्मी ११ मार्च को माता बन गई। भाभी ने यह भी लिखा है कि

उसकी कन्या बड़ी ही सुन्दर है। मैं शीघ्र ही राजलक्ष्मी को पत्र भेजूँगी। भगवान् दोनों को सर्वदा प्रसन्न रखे। मेरा बस चलता, तो इसी समय प्रयाग आ जाती, परन्तु अभी मुझे न जाने अपनी कितनी प्रिय बातों से अपने आपको विमुख रखना है। मैं नहीं जानती कि कब तक मेरी यह दशा रहेगी।

श्यामू मुझसे बराबर मिलता रहता है। उसने मुझे बताया है कि अब माधवी और आशुतोष में कटुता बढ़ती जा रही है। आशुतोष आर्थिक कष्ट से पीड़ित हैं। माधवी कभी-कभी समस्त दिन और कभी-कभी सारी रात्रि बाहर रहती है। उसे बहाना तो है ही कि उसे काम पर बाहर रहना पड़ता है। उस धनी व्यक्ति से, जिसकी चर्चा मैंने आपसे अपने पिछले पत्र में की थी, माधवी का सम्बन्ध बहुत निकट हो गया है। आशुतोष को माधवी से उस व्यक्ति का सम्पर्क असहनीय हो गया है। प्रायः नित्य ही दोनों में इस विषय पर कटु शब्दों में कहा-सुनी होती है, परन्तु माधवी को अब आशुतोष की चिन्ता नहीं है। आशुतोष का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। वे आर्थिक और शारीरिक चिन्ताओं से घिरे हुए हैं। अभी कुछ दिन हुए, श्यामू उनके कमरे में गया। उसने देखा कि आशुतोष मेरे एक चित्र को लेकर उसे एकाग्रता से देख रहे हैं और उनके नेत्रों में कुछ अश्रु-बिन्दु भी उसे दिखे। यह सुनकर मेरा हृदय फटने लगा। मैं अधीर हो गई। परन्तु क्या करूँ? आपकी आज्ञानुसार हृदय पर पाषाण रखकर सब कुछ सहन कर रही हूँ।

भाभी ने लिखा है, इस बार आप यमुनोत्री और पुनः गंगोत्री जा रहे हैं। मुझे अपनी यात्रा की तिथियाँ पूरी तरह से लिखियेगा। यदि यमुनोत्री न चल सकी, तब भी गङ्गोत्री तो

आपके साथ अवश्य चलूँगी। मुझे अभी गङ्गा से और प्रार्थना करनी है। कब तक वे मेरे क्लेश की ज्वाला शान्त नहीं करेंगी।

पत्र की प्रतीक्षा में—

आपकी बहिन,
शैल

मैंने शैल के पत्र के उत्तर में लिखा :—

प्रयाग
२४ मार्च १९६५

मेरी प्रिय शैल,

तुम्हारा पत्र मिला। उसे पढ़कर मैं भी विचलित हो गया। तुमने अपनी तपस्या से ब्रह्माण्ड को कम्पित कर रखा है। भक्त की कातर ध्वनि से देवताओं को कष्ट होता है। वे स्वयं ही तुमसे अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए अब शीघ्र ही तेरे मनोरथ पूर्ण करेंगे। शैल, तू अब भारतीय नारी के ओज और तेज की सजीव प्रतिमा बन गई है। मैं तुझे अधिक क्या लिखूँ। यहाँ सब कुशल है। मैं तुम्हें अपनी यमुनोत्री गङ्गोत्री यात्रा की तिथियों की सूचना दे दूँगा।

मङ्गलाकांक्षी
भय्या

इसके पश्चात् अगले दो-तीन सप्ताहों में राज के पास शैल के एक दो पत्र आए, परन्तु उनमें आशुतोष के सम्बन्ध में कोई विशेष बात नहीं लिखी थी। फिर २० अप्रेल को मुझे शैल का निम्नलिखित पत्र मिला :—

कलकत्ता
१८ अप्रेल १९६५

मेरे अति प्रिय भय्या,

आपका २४ मार्च का पत्र रोचक होते हुए भी मुझे कुछ अंश में अच्छा नहीं लगा। आप क्या-क्या लिख गए हैं—'मैंने ब्रह्माण्ड को कम्पित कर रखा है', 'देवता मुझसे पिण्ड छुड़ाने की चेष्टा करेंगे और मैं मानव से न जाने कैसी सजीव प्रतिमा बन गई हूँ।' छिः छिः! आप कैसी बातें लिखते हैं। मुझे आप पृथ्वी पर मानव के रूप ही में रहने दीजिए। मैं किसी भी प्रकार की प्रतिमा नहीं बनना चाहती।

अब यहाँ का हाल सुनिए। आशुतोष अपने विद्यार्थी-जीवन में बङ्गाल की विख्यात फ़ुटबाल टीम मोहनबागान के एक विशिष्ट खिलाड़ी थे। एक बार खेलते हुए उनकी पैर की हड्डी में गहरी चोट लगी थी। लगभग दो सप्ताह पूर्व पैर में उसी स्थान के पास उन्हें फिर चोट लगी और घाव बन गया। वह बढ़ता गया और उसके कारण उन्हें ज्वर रहता है। श्यामू ने जब से यह बताया है, तभी से मैं चिन्ता-ग्रसित हो गई हूँ। उनकी देख-भाल करनेवाला कोई नहीं है। माधवी अब उनसे बहुत खिंच गई है और उस घर में रहते हुए भी उसे उनका ध्यान नहीं है। वह उनका तिरस्कार करती है। श्यामू ही उनके भोजन, औषधि, चिकित्सा आदि का अपनी यथाशक्ति प्रबन्ध कर रहा है। जहाँ तक मैंने सुना है, उससे यही ज्ञात हुआ कि अभी तक उन्हें किसी योग्य डाक्टर ने नहीं देखा है। उनका ज्वर भी बढ़ रहा है और पीड़ा में भी वृद्धि हो रही है। यह सब देखते हुए भी अब मैं कैसे मौन रह सकती हूँ! अब मैं आपकी बात नहीं मानूँगी और जो मेरी बुद्धि में आएगा, वही मैं करूँगी। यह सम्भव है कि कुछ सप्ताह तक आपको अथवा भाभी को पत्र न भेजूँ। इसके

लिए पहिले ही से क्षमा माँगती हूँ। सबको यथा योग्य। संभवतः आपसे गङ्गोत्री में मिलूँ।

आपकी
—शैल

मैंने तुरन्त शैल को पत्र भेजा :—

प्रयाग
२० अप्रेल १९६५

प्रिय शैल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने ठीक लिखा है। अब वही करो, जो तुम्हारी बुद्धि में आए। मुझे अब यही प्रतीत हो रहा है कि शीघ्र ही तुम्हारा कष्ट दूर हो जाएगा। दैवी चेतना ही तुम्हारी बुद्धि को प्रकाश देगी और तुम जो भी करोगो, वही उचित होगा।

सस्नेह,
भय्या के आशीर्वाद

पुनश्च—मैं यहाँ से २४ मई को हरिद्वार के लिये प्रस्थान करूँगा और यमुनोत्री होता हुआ ५ जून को गङ्गोत्री पहुँचूँगा।

आशुतोष के खेलने के सम्बन्ध में शैल ने मुझे जो लिखा था, उसने मुझे विचार-सागर में डाल दिया।

'आशुतोष लाहिरी'—'मोहनबागान'—ये शब्द मेरे मस्तिष्क में गूँजने लगे। शनैः शनैः मेरी स्मृति जागृत होने लगी।

१६-१८ वर्ष पूर्व समाचार-पत्रों में मोहनबागान टीम के खेलों के विषय में ए० लाहिरी का नाम पढ़ा करता था और उसके चित्र भी देखे थे। चित्रों में उसका जो रूप देखा था, उसका भी स्मरण होने लगा। ए० लाहिरी ही आशुतोष लाहिरी है। शैल के पति के सम्बन्ध में मुझे पहिले ही से जानकारी थी! मैं फिर सोचने लगा। 'आशुतोष को कहीं देखा है। कहाँ देखा था....?' मैं पुनः ध्यान-मग्न हो गया। अकस्मात् मानस-पटल पर उससे मिलने के अवसर का स्मरण आ गया। मोहनबागान और ईस्ट बङ्गाल टीमों का खेल था। मैं उसे देखने बङ्गाल के महामहिम राज्यपाल के साथ गया था। खेल आरम्भ होने के पूर्व राज्यपाल को दोनों टीमों के खिलाड़ियों से मिलाया गया था। मैं राज्यपाल के पीछे ही था और वहीं मैंने आशुतोष को निकट से देखा था। उसकी छवि मेरे सामने आ गई—गौर वर्ण, लम्बा क़द—५'-१०॥" या ५'-११" से कम नहीं होगा, स्फूर्ति-भरी आँखें, हँसता हुआ सुन्दर मुख, उभरी छाती और सुडौल शरीर—उसने भी मुझे भरपूर दृष्टि से देखा था। वह उस समय इन्द्र के समान लग रहा था। वही शैल का आशुतोष है! वह वीर उत्साही युवक आज किस दयनीय स्थिति में पड़ा है! भुवनमोहिनी! तुम्हारी लीला तुम ही जानो।

(५)

२४ मई १९६५ को राज और मैंने प्रयाग से रेल द्वारा प्रस्थान किया। दूसरे दिन प्रातःकाल हरिद्वार पहुँचे। स्टेशन पर ही हमारे लिए एक जीप मोटर खड़ी थी। स्टेशन से हर की पेढ़ी गए और वहाँ स्नान करके ऋषिकेश की ओर बढ़े। ६ बजे सुबह ही हमें ऋषिकेश से अपनी जीप पर आगे चलना था।

ऋषिकेश में केवल पन्द्रह बीस मिनट ठहर कर हमने वहाँ से प्रस्थान किया। समस्त मार्ग परिचित था—नरेन्द्रनगर और चम्बा होते हुए हम टेहरी पहुँचे। वहाँ भोजन के लिए कुछ रुकना पड़ा। सायंकाल ४॥ बजे हमने धरासु पहुँच कर वहाँ के डाकबँगले में विश्राम किया। और रात्रि वहीं काटी। २६ मई को धरासू से सुबह आगे बढ़े और बड़कोट के निकट आकर यमुना के दूर ही से दर्शन किए। यमुना को प्रयाग में तो बाल्यकाल ही से देख रहा हूँ। मथुरा और देहली में भी यमुना का रूप देखा है, परन्तु बड़कोट के ऊपर की पर्वतमाला से, जहाँ हमारी जीप चल रही थी, यमुना का दृश्य अति मनोहर लग रहा था। यहाँ नदी के दोनों ओर लगभग तीन चार फरलांग चौड़ी समतल भूमि है, जिसमें छोटे छोटे सुन्दर ग्राम हैं। सारा क्षेत्र सघन है। हम बड़-कोट होते हुए आगे बढ़े और गंगानी के डाकबँगले में ठहरे। वहीं रात्रि भर ठहरना था।

सायंकाल मैंने डाकबँगले के निकट ही बहती हुई यमुना के जल का आचमन लिया। सूर्य-तनया यमुना के दर्शन मात्र से मेरे हृदय में कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि आने लगी। यमुना और कृष्ण का वैसा ही सम्बन्ध है, जैसे गंगा और शिव का। यमुना का कल्लोल मानों कृष्ण की बाल-लीला की स्मृति में उसका उल्लास नाद है। मैं सूर्यास्त तक यमुना के तट पर स्थित एक शिला पर बैठा रहा। राज को एक स्त्री मिल गई, जिसका खेत डाकबँगले से मिला हुआ था। वह राज को अपने घर की कथा सुनाती रही। अगले दिन से हमारी पद-यात्रा आरम्भ होनेवाली थी और अगला पड़ाव सियाना गंगानी से १६ मील दूर था। मुझे यह जानकर कुछ सान्त्वना हुई कि जीप से हम ३॥ मील और आगे जा सकेंगे और जहाँ से हमें

पैदल चलना पड़ेगा, वहाँ से सियाना १२,१२॥ मील ही रह जाएगा।

२७ मई को हम प्रातःकाल जीप से रवाना होकर ३॥ मील आगे गए और वहाँ से चलना आरम्भ किया। मेरा अनुमान था कि १२ मील छः घण्टे में पार हो जाएँगे और हम सियाना १ बजे दिन तक पहुँच जाएँगे। हमारे साथ घोड़े भी थे, परन्तु राज ने निश्चय कर लिया था कि वे पैदल ही चलेगी। मैंने भी उनका अनुकरण किया। मार्ग रमणीक था। बहुत सघन क्षेत्र—इसमें वनकुक्कुट भी दिखाई दिए। श्वेत गुलाब की प्रफुल्लित झाड़ियाँ और अनेक प्रकार के पुष्पों से लदी हुई लताएँ और वृक्ष, चारों ओर विशाल पर्वत-मालाएं और नीचे नृत्य करती हुई सूर्यतनया—ऐसे ही मार्ग पर हम चल रहे थे। मैं कभी कभी आगे बढ़ जाता था, फिर रुकता था, पर राज एक ही चाल से बिना रुके आगे बढ़ती गईं। वह बारह मील बीस मील बन गए। कहीं कहीं मार्ग टूट गया था, जिसके कारण नदी तट तक नीचे उतरना पड़ता था और पुनः कष्टदायक चढ़ाई। उस दिन चलते चलते हम दोनों की बड़ी दुर्दशा हो गई। तीन बजे के पश्चात सियाना पहुँचे और वहाँ के डाक बँगले में पहुँचते ही लेट गए। एक एक अंग जकड़ गया था। हम भोजन कर शीघ्र ही निद्रा-देवी के वशीभूत हो गए।

अगले दिन ७ बजे प्रातःकाल यात्रा आरम्भ हुई। अगला पड़ाव बर्फि सियाना से ६ मील है। हम निश्चिन्त थे कि वहाँ ११-११॥ तक पहुँच जाएँगे। मार्ग की रमणीकता और अधिक हो गई थी, परन्तु मुझे यहाँ के वातावरण में कुछ कठोरता का आभास हुआ। मैं सोच में पड़ गया। यमुना के तट भारतीय

इतिहास की रङ्गभूमि रहे हैं। महाभारत के काल में मथुरा राजधानी थी, फिर यमुना-तट पर दिल्ली बसी, जो अभी तक राज्यसत्ता का केन्द्र बनी हुई है। इसके तट से शासन का सूत्रपात होता था। इसी के तटों पर रक्तपात भी हुए। इसी के तट पर मुगलकाल में आगरा राजधानी बनी। इसी के तट पर बौद्धकाल में कौशाम्भी राजधानी थी। इसी के तट पर प्रयाग में अकबर ने अपना दुर्ग बनाया। यमुना के वातावरण में रजोगुण प्रधान प्रतीत होता है। वह यदि सतोमुखी बने, तो कल्याणकारी होगा और यदि तमोमुखी रहे, तो पतन का सूचक होगा। इस समय का यमुना का यह क्षेत्र, जिसमें मैं चल रहा था, रजोगुण तमोमुखी बना हुआ था। यहाँ के रहनेवाले दरिद्रता और भयानक रोगों से घिरे हुए हैं। इस स्थान को यदि सतोमुखी कर दिया जाए, तो यहाँ के निवास से इस क्षेत्र में रहनेवालों में शौर्य और तेज बढ़ेगा। शासक वर्ग को यहाँ रहकर प्रेरणा मिलेगी और सैनिकों को यहाँ रहकर अनुपम बल की प्राप्ति होगी।

इन्हीं विचारों में डूबा हुआ मैं चल रहा था। सहसा मैंने देखा कि आगे मार्ग के किनारे एक युवती बैठी हुई है। उसके कपड़े रंगीन थे। मुझे स्मरण नहीं कि किस रंग के थे मैं उसके रूप को दूर से देख कर चकित हो गया। उसकी अवस्था २०-२२ वर्ष की होगी। उसका मुख बिलकुल नवविकसित गुलाब के पुष्प जैसा था। उसका रंग ऐसा था जैसे वह दुग्ध जिसमें थोड़ी मात्रा में सिन्दूर घोल दिया गया हो। दूर से यही प्रतीत होता था जैसे कोई अप्सरा बैठी हो। जब मैं उसके और निकट पहुँचा तो उसे देख कर धक्क रह गया, जैसे किसी सर्प ने डँस लिया हो। वह कुष्ट-रोगिणी थी। उसके ऊपर के होठ को कुष्ट

ने फोड़ दिया था। उसने मेरी ओर अपनी पूर्ण दृष्टि से देखा। मुझे लगा जैसे उसकी दृष्टि में समस्त संसार की पीड़ा भरी हो। मेरी कुछ क्षणों ही में विचित्र अवस्था हो गई थी। मैं उसके पास पहुँच कर रुका और अपनी जेब में जो कुछ भी मुझे मिला, उसे उसको अर्पित करके आगे बढ़ गया। दस पन्द्रह क़दम आगे बढ़ने के पश्चात मुझे कुछ विचार आया। मेरे साथ तहसीलदार, कुछ पुलिस और तहसील के कर्मचारी थे। मैंने तहसीलदार साहब से कहा कि 'इस युवती का, जो पीछे बैठी है, पूरा पता लगा कर मुझे सूचित किया जाए,' इतना कह कर मैं आगे बढ़ गया। मेरी विचित्र दशा हो रही थी। रह रह कर उस युवती का मुख मेरी आँखों के सामने आ रहा था। हम यमुना चट्टी, फूल चट्टी होते हुए ११ बजे बीफ के डाकबँगले में पहुँच गए। डाकबँगले के सामने यमुना थी और उसके पार खरसाली का सुन्दर ग्राम। मैंने सोचा था कि हम खरसाली जाएँ, परन्तु मेरा मन इतना खट्टा हो गया था कि मैं डाकबँगले से बाहर नहीं निकला। सूर्यास्त के पश्चात ठण्डक भी अधिक हो गई थी। सामने हिम आच्छादित पर्वत-शिखर थे। यमुनोत्री उस स्थान से केवल चार मील रह गई थी। हमने कमरे में आग जलाई, जिससे ठण्डक में कमी हुई। मैंने राज से उस कुष्ट-रोगी कन्या की चर्चा की। राज ने कहा कि "मैंने भी उसे देखा था, परन्तु मैंने उसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया और यह न देख सकी कि उसे कुष्ट रोग है।"

फिर मन्द मुस्कान-सहित राज ने कहा—"मुझे लगता है कि शैल के बाद अब उसी का ध्यान आपको घेरेगा। आप जगत की पीड़ा अपने ऊपर ख़ूब लेते हैं!"

मैं मौन रहा। उन्होंने फिर कहा—"तभी तो कहती हूँ कि

आप कब तक किसके हैं और कहाँ तक किसके साथ हैं, यह जब मैं स्वयं नहीं जान सकी, तो कोई और क्या जानेगा !"

'आपको मेरी ओर से तो कभी ऐसा भ्रम नहीं हुआ ?'

'कभी कभी हुआ है। आप पृथ्वी पर विचरते विचरते अकस्मात खोए से लगने लगते हैं। उस समय मुझे प्रतीत होता है कि आप नभोमंडल में भ्रमण कर रहे हैं और मुझसे दूर हो गए हैं। ऐसी दशा में आपको देख कर पहिले मैं भयभीत हो जाती थी, परन्तु अब तो साथ रहते रहते वह स्थिति साधारण सी बन गई है और वह अब मुझे विचलित नहीं करती।'

मुझे हँसी आ गई, राज भी हँसने लगी।

३० मई को प्रातःकाल बीफ से हम दोनों चले। दो मील तक तो साधारण चढ़ाई थी। परन्तु उसके बाद तो ऐसी विकट चढ़ाई आरम्भ हुई कि क्या कहा जाए! एक मील तक जैसे ज़ीनों पर ही ऊपर चढ़ना पड़ा। दो क़दम चल कर रुकना पड़ता था। बुरी तरह से साँस फूल गई थी। किसी न किसी प्रकार अपने शरीर को ऊपर घसीटते हुए हम ऊपर पहुँच ही गए। आगे एक मील का मार्ग समतल और कुछ ढलाव लिए हुए था। हम यमुनोत्री पहुँच ही गए। सामने सूर्यतनया पर्वत-शिखर से हिम की चादर ओढ़े नीचे आ रही थी। नीचे हिम के पाषाण बिछे हुए थे। उन्हीं के नीचे से यमुना बह रही थी। उसका वेग से नीचे आना और आगे बहना बता रहा था कि मानो वह कृष्ण के चरण-स्पर्श के उल्लास को भूली नहीं है और यह पिपासा लिए हुए है कि शीघ्रता से उसी भूमि पर पहुँच जाए, जो योगेश्वर कृष्ण की बाललीला का क्षेत्र था। यमुना का अन्त प्रयाग में नित्य ही देखा है—अब भाग्य से उसके आरम्भ का

रूप भी देख लिया। यमुना के पास तप्त कुंड में हमने स्नान किया, फिर पूजन किया और यमुना के मन्दिर में यमुना के दर्शन किए और वहाँ थोड़ी देर ठहर कर और भोजन करके सायंकाल ५ बजे वापिस बीफ आ गए।

३१ मई को बीफ से चल कर पुनः सियाना आए। वहाँ पहुँचने पर तहसीलदार ने मुझे उस कुष्ट रोगी युवती का पता और पूरा हाल लिख कर दे दिया। फिर हम गंगानी पहुँचे और वहाँ से धरासू ठहरते हुए ४ को उत्तरकाशी आए। वहाँ मुझे शैल का पत्र मिला ,जो उसने मुझे उत्तरकाशी के कलक्टर के द्वारा भेजा था और जो उत्तरकाशी में मेरी प्रतीक्षा कर रहा था।

कलकत्ता
२४ मई १९६५

मेरे प्रिय भय्या,

सादर प्रणाम। आज आपने और भाभी ने यात्रा के लिए प्रयाग से प्रस्थान किया होगा। भाभी ने मुझे आपकी यात्रा की समस्त तिथियों का विवरण भेज दिया है। उससे मुझे ज्ञात होता रहेगा कि किस दिन आप कहाँ हैं। मेरा मन और ध्यान आपके साथ रहेगा। मैं आपको बहुत कुछ लिखना चाहती थी, परन्तु अब मैं स्वयं गङ्गोत्री आ रही हूँ और वहीं मिलना होगा। भाभी को मेरा बहुत प्रेम-पूर्ण प्रणाम।

आपकी
शैल

हम दोनों को कुछ आश्चर्य हुआ कि शैल ने पत्र में अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। अब हमें उससे मिलने की उत्सुकता

और अधिक बढ़ गई। उत्तर काशी से दूसरे दिन प्रातःकाल जीप द्वारा चलकर हम झाला के पुल पर पहुँचे। नया पुल बन रहा था। किसी प्रकार से पुराने पुल पर ही से अपनी जीप पार कराई। उस समय घोर वृष्टि होने लगी थी। जीप का चलाना कठिन समस्या हो गई। सड़क पर फिसलन भी बहुत थी। मार्ग कहीं-कहीं बहुत तङ्ग था। यही भय था कि कहीं जीप जाह्नवी की गोद में न पहुँच जाए। हम बड़ी कठिनाई से धराली पहुँचे। वहाँ कुछ देर ठहर कर जांगला के पुल के निकट पहुँचे। इसके आगे जीप के लिए मार्ग नहीं था। वहीं जीप को छोड़कर पानी में भीगते हुए हम तीन मील चलकर भैंरोघाटी पहुँचे। वहाँ भीषण शीत पड़ रही थी। डाक बँगले के कमरे में पहुँचते ही आग जलवाई। फिर कहीं शरीर में गरमी आई। अगले दिन गङ्गोत्री के लिए प्रातःकाल ही चले और दस बजे वहाँ पहुँच गए। वहाँ पहुँच कर राज ने कहा कि 'हम यहाँ दूसरी बार आए हैं। तीर्थ-स्थान में एक बार या तीन बार जाना चाहिये—दो बार नहीं।'

मैंने कहा—'अभी तो आप यहाँ पहुँची हैं—अभी से तीसरी बार आने की चिन्ता आरम्भ हो गई।'

थोड़ी देर विश्राम करने के पश्चात् हम गङ्गा-स्नान करने पहुँचे। ऐसा ठंडा जल था कि स्पर्शमात्र से शरीर कटने लगता था। स्नान करके मन्दिर में दर्शन किये और फिर स्वामी कृष्णा-श्रम की कुटी में पहुँचे। स्वामी जी और माता जी दोनों ने बड़े प्रेम से हमारा स्वागत किया। माता जी ने शैल के सम्बन्ध में पूछा।

मैंने कहा—वह यहाँ आ रही है। उसके आने पर ही ज्ञात होगा कि वह किस स्थिति में है।

मैं राज को माता जी के पास छोड़कर डाक बँगले आ गया।

वहाँ मुझे शैल का तार मिला, जिसके द्वारा उसने मुझे सूचित किया था कि वह कल गङ्गोत्री पहुँच रही है।

अगले दिन हम दोनों स्नान करके स्वामी कृष्णाश्रम के यहाँ गए। वहाँ राज को छोड़कर मैं गङ्गा के तट के साथ-साथ दो मील और आगे चला गया। यही प्रतीत होता था, मानों स्वर्ग में चल रहा हूँ। गङ्गा का कल्लोल नाद वास्तव में उसे सुर-तरङ्गिणी बनाए हुए था। वहाँ से मैं सीधा डाक बँगले आया और केदार गङ्गा के निकट कुरसी मेज लगा कर वहाँ बैठकर चाय पीने लगा। उस समय ११-३० बज गए थे। क्या देखता हूँ कि डाक बँगले से शैल निकली और उसके साथ एक युवक। मैं सीधा वापिस आकर बाहर बैठ गया था। मुझे किसी ने कहा ही नहीं कि शैल आ गई है। उसे आए दो घण्टे हो चुके थे। वह स्नान कर चुकी थी। जिस समय वह मेरे सामने आई, वह इन्द्रधनुष के रङ्गों से रँगी हुई चन्देरी की साड़ी पहने हुए थी। ऊपर से एक हल्का सा शाल ओढ़े हुए थी। उसका मुख सौन्दर्य की प्रतिभा से दमक रहा था। उसको पहिले मैंने वियोगिनी के ही रूप में देखा था। इस समय वह लावण्यमयी सुन्दरी लग रही थी। और उसके साथ का युवक! वही गौर वर्ण का लम्बा सुडौल और आकर्षक युवक था, जिसे मैं कई साल पूर्व देख चुका था। वे दोनों मेरे पास आकर खड़े हो गए। मुझे यही प्रतीत हुआ, जैसे इन्द्राणी इन्द्र के सहित सामने खड़ी हो। मैं आश्चर्य-चकित स्थिति में बैठा ही रह गया। मेरे मुख से यही निकला—'शैल! आशुतोष!'

फिर मैंने खड़े होकर दोनों का अभिनन्दन किया। शैल कुछ देर तक तो मुसकुराती रही। फिर उसकी मुद्रा में गम्भीरता आने लगी और कुछ क्षणों के पश्चात ही उसके नेत्रों से अश्रु-धारा बहने लगी। उसने बड़ी अधीरता से मेरे चरण पकड़ लिए

और फूट-फूट के रोने लगी। मेरे नेत्र भी सजल हो गए। आशुतोष पहिले तो स्तम्भित अवस्था में खड़ा हुआ था। उसने भी मेरा पैर पकड़ लिया और मुझसे ऐसा चिमट गया, जैसे कभी अलग होगा ही नहीं।

वह विचित्र दृश्य था। मैं नहीं कह सकता था कि कितनी देर तक हम तीनों अधीरता की स्थिति में रहे। पहिले मैं ही सम्हला और मैंने उन दोनों को कुरसियों पर बिठाया। मैंने आशुतोष से कहा कि 'मैं तुम्हें पहचान गया था। तुम्हें कुछ स्मरण है कि मैं तुमसे कहाँ मिला था?'

'जी हाँ, मैंने शैल से आपको देखते ही कहा था कि मैं आपसे पहिले मिल चुका हूँ।'

'तुम्हारा स्वास्थ्य अब कैसा है?'

'मैं अब ठीक हूँ। अभी पैर में थोड़ी शिथिलता है, परन्तु वह भी शीघ्रता से जा रही है।'

'तुम तो विख्यात फुटबाल खेलनेवाले थे। यह जीवन के खेल में तुम्हें क्या हो गया था?'

'क्या बताऊँ! मुझे अब यही समझ में आता है कि किसी ने बलात मुझे अन्धकार में डाल दिया था। मेरी बुद्धि को किसी ने हर लिया था। अमूल्य मणि को कौन समझे-बूझे फेंक देता है।'

शैल बीच में बोली—'भय्या, इनसे कुछ मत कहिये, मेरा ही ग्रहण-काल था। इनका दोष नहीं है। जब मैं राहु के ग्रास से मुक्त हुई, तो आशुतोष मुझे पुनः मिल गए।'

मैंने कहा—'आशुतोष, शैल शक्तिरूपा है। इसको साथ लेकर तुम संसार में निर्भय होकर चल सकते हो, अब भविष्य

में कभी भी इसे क्लेश न हो। इसका उत्तरदायित्व तुम्हारे ही ऊपर है।'

आशुतोष चुप रहा। शैल ने उसके हाथ पकड़ लिए और कहा—'भय्या, मैं यही जानती हूँ कि जो कुछ हुआ, वह एक बुरा स्वप्न ही बन जाएगा। मुझे स्वयं आशुतोष पर पूर्ण विश्वास है। भविष्य के लिए आप निश्चिन्त रहें।'

इतने में राज आ गईं। शैल उनसे प्रेमावेश में लिपट गई और दोनों के अश्रुधाराएँ बहने लगीं। मैंने ही उन्हें सान्त्वना देते हुए राज को आशुतोष से मिलाया। उसने राज के चरणों में अपना सिर रख दिया। राज ने भी बड़े स्नेह के साथ उसे उठाया। मैंने राज से कहा कि 'आप आशुतोष को ले जाइए और यहाँ के दृश्य दिखाइए। मैं शैल से बातें करना चाहता हूँ।' वे समझ गईं और आशुतोष को दूसरी ओर ले जाकर उससे बातें करने लगीं।

शैल हँस के कहने लगी—आपने अच्छा किया, आशुतोष को यहाँ से बिदा कर दिया। अब मैं निस्संकोच आपको सब हाल सुनाऊँगी।

उसने कहना आरम्भ किया—'भय्या, मैंने आपको अपने पिछले पत्र में लिखा था कि आशुतोष की स्थिति बहुत शोचनीय हो रही है। मैंने तार देकर अपने भाई मृत्युञ्जय को काशी से बुलाया। वह तुरन्त आ गया। उसके आने के दूसरे दिन ही उसको और उसके दो दरबानों को लेकर मैं अपने घर पहुँची। माधवी ने ही द्वार खोला। उसके पीछे उसका वही मित्र था, जिसकी चर्चा मैं आपसे कर चुकी हूँ। मुझे देखते ही वह बोली—'तुम यहाँ क्यों आई हो? मैं तुम्हें यहाँ प्रवेश नहीं करने दूँगी।'

यह सुनते ही मुझे क्रोध आ गया। मैंने बड़े आवेश में आकर कहा—'तू कौन कहनेवाली होती है कि मैं यहाँ नहीं आ सकती? आशुतोष मेरे हाथ पकड़ के मुझे अपने घर लाया है। यह मेरा घर है। तू यहाँ से निकल जा।'

वह भी क्रोधित हो गई और दौड़ कर आशुतोष के कमरे में घुसी। मैं भी उसके पीछे-पीछे वहाँ गई। आशुतोष को ज्वर चढ़ा हुआ था। उसे तीव्र पीड़ा हो रही थी। मैं उसे धक्का देकर आशुतोष के पास जाकर बैठ गई और उसके दोनों हाथ मैंने अपने हाथों से पकड़ लिए।

माधवी ने चिल्लाकर कहा—'इसने मेरा अपमान किया है। मुझसे कहती है कि मैं यहाँ से निकल जाऊँ।'

मैंने भी ऊँचे स्वर में कहा—'हाँ, मैंने कहा है और फिर कहती हूँ कि यदि सीधी तरह से नहीं निकलोगी, तो मैं दरबानों द्वारा तुम्हें और तुम्हारे मित्र को यहाँ से धक्के देकर निकलवा दूँगी।'

आशुतोष अब तक आँखें बन्द किए लेटा हुआ था। उसने अपने नेत्र खोले और बड़े प्रेम से मेरी ओर देखते हुए कहा—'शैल, तुम आ गईं। अब मुझे छोड़कर मत जाना।'

यह कह उसने अपनी भुजाओं से मेरी कमर को पकड़ लिया और पुनः आँखें बन्द कर लीं।

मृत्युञ्जय, दोनों दरबान और उनके साथ-साथ श्यामू भी क्रोध-भरी दृष्टि से माधवी और उसके मित्र की ओर देख रहे थे। मेरे संकेत मात्र से ये लोग माधवी और उसके मित्र की दुर्गति कर देते। माधवी के साथ-साथ उसका मित्र भी भयभीत हो गया। उसने माधवी से कहा—यहाँ तुम्हारा अपमान हो रहा

है। अब तुम्हारा यहाँ रहना उचित नहीं है। शीघ्र ही अपना सामान बटोर करके यहाँ से चलो।

माधवी अपना सामान लेने अपने कमरे की ओर बढ़ी। श्यामू उसके पीछे-पीछे चला और चिल्ला कर बोला—'तुम केवल अपना निजी सामान ही यहाँ से ले जा सकती हो। यहाँ की एक वस्तु को भी मैं तुम्हें छुने नहीं दूँगा।'

माधवी और डर गई। उसने जल्दी-जल्दी अपने सूटकेस में अपना निजी सामान भरा और बाहर आकर अपने मित्र के पास खड़ी हो गई।

मृत्युञ्जय ने भी गर्जन करते हुए कहा—'तुम दोनों क्यों खड़े हो? तुरन्त यहाँ से निकलो।'

फिर उसने दरबानों की ओर संकेत किया। वे उन दोनों के पास आकर खड़े हो गए। श्यामू की उत्तेजना और बढ़ गई थी। उसने माधवी के मित्र को धक्का देते हुए कहा—'यहाँ से जाते क्यों नहीं!'

दोनों भयभीत स्थिति में बाहर आए और माधवी के मित्र की मोटर पर बैठकर चले गए। मैं आशुतोष के पास ही बैठी थी। मैंने श्यामू से कहा कि चाय लाए और दरबानों को जल-पान कराए।

आशुतोष मुझे आलिंगित ही किए रहा। उसने फिर कहा—'शैल, अब मुझे छोड़कर तो नहीं जाओगी?'

'तुमको मैं छोड़ूँ! तुम संसार में कहीं भी रहो, मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूँगी। परन्तु इस समय तो मुझे अपने बन्धन से मुक्त करो। मुझे घर की व्यवस्था देखनी है। इतने लोग घर में आए हुए हैं—उन्हें देखना है और सबसे प्रथम तुम्हारी चिकित्सा

का प्रबन्ध करना है। मुझे कब तक इस तरह अपने पास बिठाए रखोगे ?'

यह सुनकर आशुतोष के मुख पर मन्द मुसकान आई। मैंने उठकर पहिले तो जलपान का प्रबन्ध किया। फिर मृत्युञ्जय से कहकर डाक्टर को बुलाया। उसने देखकर कहा कि 'आशुतोष के घाव पर तुरन्त चीरा लगना अति आवश्यक है।' मैंने उसके लिए घर ही में प्रबन्ध करवाया। उसी दिन सायंकाल को चीरा लगा। थोड़ी देर के पश्चात् आशुतोष का ज्वर भी कम होने लगा।

मैंने कुमुद को भी काशी से बुला लिया। आशुतोष शीघ्रता से नीरोग होने लगा। कुमुद के आने से घर में पुनः पहिले की तरह प्रफुल्लता आ गई। मैंने आशुतोष से आपके सम्बन्ध में कहा। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने कहा कि वे आपको एक बार देख चुके हैं। जब गङ्गोत्री चलने के लिए कहा, तो उन्होंने आपसे मिलने के लिए मुझसे अधिक उत्सुकता प्रदर्शित की। भय्या, अब मैं फिर से अपने घर की राजरानी बन गई हूँ। देवता मुझसे प्रसन्न हैं। मेरे आशु मुझे फिर मिल गए। आपके और भाभी के आशीर्वाद मुझे नित्य मिलते ही रहते हैं। अब मुझे इससे अधिक और क्या चाहिये।'

इतना कहकर शैल चुप हो गई। फिर हम दोनों उठकर राज और आशुतोष के पास आ गए।

राज कहने लगी—'आशुतोष बहुत आग्रह कर रहे हैं कि हम सब कलकत्ता जाकर कुछ दिन उनके पास रहें।'

शैल राज से गले लग कर बोली—'भाभी आप भी भली हैं, कुछ क्षणों ही में आप आशु के मुझसे अधिक निकट हो गईं। मैं आपसे लड़ूँगी, यदि आप मेरे बिना कहे हमारे यहाँ आईं।'

सायंकाल को मुझे एक सज्जन से मिलना था। इस कारण मैं शैल और आशुतोष के साथ स्वामी कृष्णाश्रम के पास न जा सका। राज उन्हें वहाँ ले गईं। बाद में मैंने सुना कि स्वामी जी ने तो दोनों को प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिए, परन्तु माता जी ने आशुतोष को बहुत आड़े हाथों लिया, परन्तु आशुतोष उनकी बातें सुनकर हँसता ही रहा।

सन्ध्या की आरती के लिए हम सब गंगा के मन्दिर में पहुँचे। सामान्य आरती के पहिले शैल और आशुतोष ने गङ्गा की अर्चना की। दोनों इतने भाव में थे कि मैं उन दोनों को देखता ही रहा। गङ्गा के सम्मुख दोनों की युगल जोड़ी बहुत ही सुन्दर लग रही थी। उनके पूजन के पश्चात आरती हुई। हिमालय के गर्भ में उस स्थान पर, जहाँ भगीरथ के प्रयास से भगवान् आशुतोष ने गङ्गा को अपनी जटाओं में उलझा लिया था, गङ्गा की आरती गङ्गा की धवल धारा के निकट हो, उसका सामान्य लेखनी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। आरती के पश्चात प्रसाद वितरित हुआ।

मैंने शैल से कहा—'गङ्गा के प्रसाद से तेरे मनोरथ पूर्ण हुए हैं। तुझे गङ्गोत्री में रहना कैसा लगेगा?'

'भय्या, मेरी गङ्गोत्री वहीं है, जहाँ ये हैं।'

इतना कहकर उसने आशुतोष को ऐसी दृष्टि से देखा, जिसमें सारी गङ्गा बह रही थी।



देवता

(१)

'मेरे देवता !'

'मैं मानव हूँ, देवता नहीं। मुझे 'देवता' मत कहो।'

'मैं कहूँगी, मैं तुम्हें इसी रूप में देखती हूँ।'

'तुम्हारे कहने से क्या मैं देवता बन जाऊँगा ?'

'आज नहीं, तो कल अवश्य बनोगे। यह ध्रुव सत्य है।'

'क्या मुझे वरदान दे रही हो ?'

'यही समझ लो।'

वह दिन है और आज का दिन है और इसके बीच में वर्षों का बीता हुआ एक युग। परन्तु उस वरदान ने मेरा कभी भी साथ नहीं छोड़ा। यदि पृथ्वी पर देवत्व की खोज का लक्षण यही है कि काँटों पर ही सदा पग रहें और हृदय में एक विलक्षण सी ज्वाला सदैव प्रतिज्वलित रहे, तो निस्सन्देह ही मैं इसी जीवन में देवत्व की ओर बढ़ता रहा हूँ। लक्ष्य के निकट कितना पहुँचा हूँ, यह दूसरी बात है।

❋ ❋ ❋

१९३७ में ही मैं आचार्य के सम्पर्क में आ गया था। परन्तु उस काल में मेरा जीवन अग्नि-शिखाओं के बीच में होकर जा रहा था। १९३५ में वह मेरी सहधर्मिणी बन कर आई थी। वह नवयौवना थी। अपने परिवार में बड़े प्रेम से पली थी। वह बहुत उमंगें और आकांक्षाएं लिए हुए मेरे पास आई थी। उसके हृदय में मेरे लिए अगाध प्रेम था। मैंने भी उसको अपने हृदय में बसा लिया। वह नव-विकसित कुमुदिनी थी। एक वर्ष बसन्त

बना हुआ बीत गया। उसके पश्चात् ही हम दोनों का जीवन धधकते हुए ज्वालामुखी की ओर बढ़ने लगा। वह मुरझाने लगी। देखते-देखते कुम्हला गई। बहुत चिकित्सा हुई, परन्तु सब निष्फल रही। मैं उसे लेकर हिमाचल के उपचार-गृहों में घूमा। सब चेष्टाएँ अपने स्थान पर ही रह गईं, उसका स्वास्थ्य गिरता ही गया। उसने बड़े साहस से रोग का सामना किया, परन्तु कभी-कभी वह अपनी परिस्थिति को देखकर हताश हो जाती थी। उसका शरीर सूख गया था, परन्तु जब वह मेरी ओर देखती थी, तो मुझे उसके नेत्रों में वही मद दिखता था, जिसकी झलक मुझे उससे प्रथम मिलन पर मिली थी। वह जीवन का रसास्वादन करना चाहती थी। उसके हृदय में उमंगें भरी हुई थीं। मैं अन्त तक यही आस लिए था कि सम्भवतः वह फिर नीरोग हो जाए। परन्तु भाग्य में यह नहीं लिखा था। २८ मार्च १९३८ को लाहोर में उसके जीवन का दीपक बुझ गया। जिसको नव-वधू के रूप में मैं हाथ पकड़ कर अपने घर लाया था, उसी की अस्थियों को लेकर मैं पुनः प्रयाग आया और उनको गङ्गा की गोद में प्रविष्ट कर दिया।

(२)

मैं आचार्य से लाहोर से लौटने के पश्चात मिलता रहा। उन्होंने मुझे सान्त्वना और शान्ति देने की चेष्टा की। मुझे धैर्य दिया, परन्तु उनके भाव में करुणा थी, मोह नहीं। वे मुझे दुखी देखकर विचलित नहीं हुए। मेरी दारुण स्थिति को ऐसे देखा, जैसे कोई शान्त मुद्रा से बैठकर संसार के चलचित्रों को देखता हो। कभी-कभी तो वे ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे कैलास-शिखर पर चन्द्रशेखर अनङ्गहर बैठे हुए अपने अर्द्ध-विकसित नेत्रों से त्रिभुवन के अट्टहास को देख रहे हों। उनकी यह कठोरता मेरे

लिए असहनीय हो जाती थी, परन्तु उन्हें तो अग्नियों की धूम-लेखाएँ भाग्य की रेखाएँ बनकर दिखती थीं। मुझे उनका दृष्टि-कोण कुछ समझ में आने लगा। मैं आसक्त था, वे निर्द्वन्द्व। मैं मोह-ग्रसित था, वे जितेन्द्रिय। मैं दुःख-सुख के बन्धनों में बँधा था, वे इन पाशों को काट चुके थे। मैं अन्धकार में पड़ा था, उनकी दृष्टि सूर्य की रश्मियाँ बन कर तिमिर को ध्वस्त कर चुकी थीं।

एक दिन उन्होंने मन्द मुस्कान के साथ कहा—'आयुष्मान्, तुमने अपने भविष्य के सम्बन्ध में क्या निश्चय किया है ?'

मैं उनका अभिप्राय नहीं समझा, मैंने बिना समझे ही कहा—'अब मेरे भविष्य में क्या रह गया है, जिसकी चिन्ता करूँ ?'

'नहीं, ऐसा विचार न करो। तुमसे बड़ी आशाएँ हैं। अभी तुम्हें जीवन में बहुत कुछ करना है। उसके लिए तुम्हें अपने आपको योग्य बनाना है। तुम्हें आत्म-उत्थान के मार्ग पर अग्रसर होना है। उसमें अब अधिक विलम्ब नहीं है ?'

'आचार्य ! मैं क्या करूँ। मुझे नैराश्य की भावना घेरे हुए है।'

'नहीं, नहीं। ऐसा मत सोचो। तुम्हारे जीवन में शीघ्र ही पुनः नवीन ज्योति आएगी।'

'कैसे ?'

'तुम्हें फिर गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करना पड़ेगा।'

'यह अब मुझसे नहीं होगा। जिस अग्नि-ताप से मैं अभी निकला हूँ, उसकी वेदना मुझे जीवन भर दग्ध करती रहेगी।'

'आयुष्मान्, तुम बलिष्ठ संस्कारों से जकड़े हुए हो। उनसे कैसे विमुख हो सकते हो ? उन्होंने तुम्हें बलात् आकृष्ट किया है और भविष्य में भी करेंगे। तुम्हारा वह दाम्पत्य-जीवन, जो कुछ समय पूर्व समाप्त हुआ है, वह भी संस्कारों का फल था।

तुम चाहते हुए भी उससे दूर नहीं रह सकते थे। उसके वियोग ने तुम्हें दारुण वेदना दी। इसे भी तुम्हें भोगना था, परन्तु इस ताप ने कुछ अंश में तुम्हें कुन्दन बनाया है। अभी तो तुम्हें दुर्गम मार्गों पर लम्बी यात्राएँ करनी हैं। उसके लिए तुम्हें अपने आपको समर्थ और बलवान बनाना पड़ेगा। तुम्हारी भावी जीवन-संगिनी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। अब आगे के पथ पर तुम उसके बिना नहीं चल सकते। उसका और तुम्हारा संयोग अब अधिक समय तक नहीं टल सकता।'

आचार्य के इन शब्दों ने मुझे कम्पित कर दिया। जिस प्रसंग से मैं दूर रहना चाहता था, उन्होंने उसी को इतनी स्पष्टता और दृढ़ता से कहा। मैं चुप होकर उनकी ओर देखने लगा। वे फिर बोले—'तुम्हें जिस मार्ग पर अब शीघ्र ही चलना है, उसमें एकाकी रह कर बढ़ना भयावह ही नहीं, हानिकर है और इसके अतिरिक्त तुम्हारे संस्कार ही यह संकेत कर रहे हैं कि तुम्हारी भावी सहचरी का तुम्हारे निकट आने का समय आ गया है। वह शक्ति-रूपा है। वही तुम्हारे आनेवाले क्रियाकलाप में तुम्हें सहयोग देगी और तुम्हें निरन्तर आगे बढ़ाएगी।"

"क्या मैं अकेला उस मार्ग पर नहीं चल सकता?"

'तुम शक्ति-उपासना में शीघ्र ही अग्रसर होगे। इस साधन-मार्ग में शक्ति का संयोग आवश्यक है और स्वकीया शक्ति ही श्रेष्ठ है। शक्ति का संसर्ग तुम्हारे मार्ग को सरस और सरल बना देगा और समस्त भयावह बाधाओं से तुम्हारी रक्षा करेगा। इस पथ पर एकाकी यात्रा भी हो सकती है, परन्तु वह सबके लिए नहीं है। तुम तो गृहस्थ-जीवन के अधिकारी हो और तुम्हारे संस्कार भी इसी का संकेत कर रहे हैं।'

'यदि इस उपासना-मार्ग में स्त्री का संसर्ग आवश्यक है, तो

मैं इससे दूर रहूँगा। उस जीवन में पुनः प्रवेश करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है।'

'आयुष्मान, तुम अपने आनेवाले जीवन से विमुख नहीं हो सकते। यदि ऐसा सोचते हो, तो यह तुम्हारी अनधिकार चेष्टा होगी। जब महामाया ज्ञानियों के चित्त को भी बलात खींच कर मोहित कर देती है, तो तुम तो अभी अबोध हो। तुम अपने प्रबल संस्कारों के आकर्षण के आगे कब तक अपने हठ पर टिके रह सकते हो?'

'मुझे इस प्रकार के आकर्षण का अभी कोई संकेत नहीं मिला है।'

'तुम्हें स्वयं इसका अनुभव होगा। इसका समय दूर नहीं है। गृहस्थ जीवन में पुनः प्रवेश करने के पश्चात ही तुम अपने भविष्य के क्रिया-कलाप में प्रवेश करने के अधिकारी बनोगे।'

'उसमें मुझे क्या करना होगा और मैं कहाँ पहुँचूँगा?'

'तुम्हें क्या करना होगा, यह तो तुम्हें समय पर ज्ञात होगा, परन्तु देवता बनना पड़ेगा।'

'देवता'—इस शब्द ने मुझे भयभीत कर दिया। जिस अग्नि-परीक्षा से मैं निकला था, वह क्या कम थी और यदि भविष्य में भी यह उपाधि मेरे साथ आलिङ्गित रही, तो और कितनी यातनाएँ मेरे सम्मुख आएँगी, यह विचार करके ही मैं अधीर हो गया।

आचार्य ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—'तुम्हें स्वयं देवता बन कर उपास्य देव की आराधना करनी है। यही श्रेष्ठ क्रम है।'

'मुझे 'देवता' का शब्द ही व्याकुल कर देता है।'

'क्यों?''

मैंने आचार्य को थोड़े शब्दों में इस शब्द की पृष्ठभूमि बताई। वे सुनकर हँसे और बोले—'उसने तुम्हें 'देवता' कहा

है। तुम निश्चय ही इसी जीवन में देवत्व प्राप्त करोगे। तुम्हें
देवी ने वरदान दिया है। वह निष्फल कैसे रह सकता है?'

'देवत्व की प्राप्ति के लिए मुझे क्या करना पड़ेगा?'

'आयुष्मान्! बहुत काल तक तुम्हें जीवन में ठोकरें खानी
पड़ेंगी और अनेक यातनाएँ सहनी पड़ेंगी, परन्तु अन्त में तुम्हें
लक्ष्य की प्राप्ति होगी।'

'जीवन में देवता कैसे होते हैं?

'कुछ तो वे देवता हैं, जिन्हें पृथ्वी पर आना पड़ता है।' कुछ
ऐसे भी होते हैं, जो मानव होते हुए भी अपनी चेष्टाओं से
देवत्व प्राप्त करते हैं, परन्तु इन सभी का जीवन-मार्ग काँटों से
परिपूर्ण रहता है।'

'मानव किस प्रकार से देवत्व प्राप्त करते हैं?'

'आयुष्मान! वे योग-बल से दैव शक्ति पर प्राबल्य प्राप्त
करते हैं और स्वयं देवताओं की तरह विश्व-संचालन के कार्य
के अधिकारी हो जाते हैं।'

मैं चकित भाव से आचार्य की ओर देखता रहा।

(३)

वही हुआ, जो आचार्य ने कहा था। भीषण सूर्यताप के
पश्चात चन्द्रमा की सुखमय ज्योत्स्ना को लिए हुए उसने मेरे
विक्षिप्त जीवन में पदार्पण किया। वह गहरे नीर की तरह प्रशांत
है। उसकी गम्भीर मुद्रा ऐसी है, जैसे कोलाहलपूर्ण जगत में
रहते हुए भी वह उससे पृथक् है। उसके नयनों में संसार की
पीड़ा के ताप को दूर करने की सामर्थ्य है। वह हर प्रकार से मेरे
क्रिया-कलापों में सहयोग ही नहीं, उन्हें आगे बढ़ाने की क्षमता
रखती है। उसने कभी भी मेरे कार्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में किसी
कौतूहल का प्रदर्शन या आश्चर्य नहीं प्रगट किया। सर्वदा यही
विदित होता था, जैसे वह स्वयं भी जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों

से उसी मार्ग पर चलने की अधिकारी है, जिसकी खोज में मैं वर्षों से भटक रहा था।

❀ ❀ ❀

एक दिन मैं आचार्य के पास गया। वे मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'आयुष्मान्! मैं तेरी प्रतीक्षा कर रहा था।'

'मैं भी आपसे मिलने के लिए व्याकुल था, आचार्य! सांसारिक दृष्टि से मुझे बहुत कुछ प्राप्त है, परन्तु हृदय में एक विचित्र ज्वाला है, जो सर्वदा धधकती ही रहती है और मुझे चैन नहीं लेने देती।

'तुम्हारा क्या लक्ष्य है?'

'जीवन की साधारणता से ऊपर उठना। वह कैसे होगा, यह मैं नहीं जानता।'

'तुझे जीवन का मोह है?'

'कुछ अंश में है ही।'

'तुम्हें घृणा और लज्जा का भाव है?'

'हाँ—आचार्य!'

'तुम दुःख में दुखी और सुख से सुखी होते हो?'

'यह भी बहुत अंश में सत्य है।'

'स्त्री तुम्हें आकर्षित करती है?'

'मैं नहीं कहूँगा कि बिलकुल नहीं करती।'

'तुम्हें धन की कामना है?'

'उसकी आवश्यकता स्वीकार करते हुए भी वह मुझे मोहित नहीं कर सकता।'

'आयुष्मान्, तुम सत्यवादी हो। महामाया तुमसे प्रसन्न है, तुम कौल-मार्ग के अधिकारी हो। आज ही निशा में तुम दोनों का संस्कार होगा।'

बहुत काल भटकने के पश्चात् यह दिन आ ही गया।

(४)

पूजन-गृह बन्दनवार और पुष्पों की मालाओं से सुसज्जित था। धूप और गुग्गुल की धूम्र-शिखाएँ उसमें व्याप्त थीं। आचार्य चक्रेश्वर थे। उनके वाम में उनकी शक्ति थी। सामने एक रजत थाली में यन्त्र स्थापित था। उनके दक्षिण भाग में मैं और मेरी सहचरी; आगे दो अभिषिक्त वेदपाठी ब्राह्मण थे। हम सभी चक्राकार-रूप में बैठे थे। पहिले वेद-पाठ हुआ। उसके पश्चात आचार्य ने अर्चन आरम्भ किया। अपने सम्मुख पात्र स्थापित किए। घट पूर्ण किया और उसका शोधन किया। यन्त्र के केन्द्र में भुवनमोहिनी का आवाहन किया। उनके साथ-साथ उनके भैरव और देव-मण्डल का फिर आवरण-पूजन आरम्भ हुआ। गुग्गुल, चन्दन, केसर और धूप के जलने से उत्पन्न हुआ धूम्र समस्त पूजन-गृह में आच्छादित था। उसने मस्तिष्क में प्रविष्ट होकर मन और बुद्धि की गति में उल्लास उत्पन्न किया। आचार्य अर्चन में तल्लीन थे। उनकी छवि मनोहर थी। यह प्रतीत होता था जैसे सदाशिव स्वयं शैलसुता को अपने सम्मुख बिठा कर उन्हें विस्मय से देखते हुए उनकी आराधना कर रहे हों। यन्त्र जागृत प्रतीत होने लगा। शनैः शनैः यह आभास होने लगा कि जगज्जननी अपने भैरव-सहित और योगिनियों और देव-मण्डल से घिरी हुई सामने प्रदीप्तमान हैं। मैंने अपने वाम की ओर दृष्टि डाली। मेरी सहचरी के नेत्र बन्द थे। उसके मुख पर एक विलक्षण आभा थी। फिर उसने अर्द्ध-स्फुटित नेत्रों से मेरी ओर दृष्टिपात किया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मुझे पृथ्वी से आकाश की ओर उठा रही हो। आचार्य ने आवरण-पूजन समाप्त किया। नैवेद्य दिया, पञ्चबलि की और फिर जगदम्बा की आरती के लिए सबको खड़े होने का आदेश किया। मधुर स्वरों में

श्लोकों का उच्चारण किया। उसके समाप्त होने पर हम दोनों को सम्बोधन किया—'आयुष्मान् ! अब तुम अपनी सहधर्मिणी के साथ भुवनमोहिनी की आराधना के अधिकारी बनो। यह बहुत ही दुर्लभ है और जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों के सुफल से ही प्राप्त होती है। तुम दोनों इसके अधिकारी हो। यह तुम्हें संसार के बन्धनों से मुक्त कराएगी। यदि तुमने इसका यथाविधि पालन किया, तो तुम्हें ओज, शौर्य और बल प्राप्त होगा। यह भोग और मोक्ष-प्रदायिनी है। दोनों ही साथ-साथ मिलेंगे।'

फिर आचार्य ने पहिले मुझे और मेरे पश्चात मेरी सहधर्मिणी को त्रैलोक्य-मोहिनी की आराधना में दीक्षित किया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे शरीर में अग्नि संचारित हो गया, नाड़ियों में रक्त के प्रवाह की तीव्रता में वृद्धि हो गई, हृदय की शून्यता में किसी विलक्षण शक्ति का प्रवेश हो गया।

आचार्य ने पात्र-वन्दना आरम्भ की। इसके साथ-साथ महाविद्याओं के ध्यान भी उच्चारण करते जाते थे। जिस समय उन्होंने अपनी मधुर वाणी में शक्ति-पात्र की वन्दना स-स्वर उच्चारण की, तो ऐसा लगा जैसे स्वयं जगन्मोहिनी यन्त्र से उठकर उन्हें कौतूहल पूर्ण दृष्टि से देख रही हो :—

सर्वानन्दकरं सदाशिवपदं सर्वार्थ-सम्पत्प्रदम् ।
साम्राज्यार्थकरं समस्त सुखदं चाज्ञान-विध्वंसनम् ॥
आयुः कीर्ति यशो विवर्द्धनकरं संसार-मोहच्छिदम् ।
पात्रं लक्षगुणात्मकं च नवमं प्रौढप्रतापं भजे ॥❀

❀ सम्पूर्ण आनन्द के देनेवाले, सदाशिव के पदवाले, सब अर्थों और सम्पत्तियों के देनेवाले, साम्राज्य प्रदान करनेवाले

फिर सदाशिव के ध्यान ने तो मानो कैलास शिखर पर ही पहुँचा दिया :—

देवं नाग-निबद्ध-सुन्दर-जटा हस्तै कृपाणाभये ।
बिभ्राणं त्रिशिखं त्रिनयनं सस्मेर-पञ्चाननं ॥
सुश्वेतं सरसीरुहो परिगतं चर्माम्बराडम्बरम् ।
शम्भो पात्रमहं ददामि सुधया चैकादशं पूरितं ॥❋

वन्दना समाप्त हो गई। आचार्य कुछ क्षणों के लिए ध्यान-मग्न हो गए। वेदपाठी भी नेत्रों को बन्द किए अन्तमुंखी बने हुए थे। मैंने अपने वाम की ओर अपनी सहचरी पर दृष्टि डाली। उसकी छटा विलक्षण थी। वह मेरी ओर अधखुले नेत्रों से देखने लगी। उसका भाव प्रेमरस और करुणा से परिपूर्ण था। उसके मुख पर मन्द मुस्कान थी। वह बोली नहीं, परन्तु ऐसा लगा, जैसे संकेत कर रही है कि अब जो भी विघ्न तेरे सामने आएँ, उनसे निर्भय होकर आगे बढ़। मैं तेरे साथ हूँ और मैं ही सदैव तेरी रक्षा करूँगी। मैं भी उसकी ओर देखता रहा।

आचार्य ने अपने चक्षुओं को खोला। फिर बोले—'आयुष्मान् ! आज मेरी अभिलाषा की पूर्ति हुई। पाँच वर्ष पूर्व

सारे सुखों को देनेवाले, आयु, कीर्ति, यश को बढ़ानेवाले, लक्ष-गुणात्मक, प्रौढ़ प्रतापवाले नवें पात्र का मैं सेवन करता हूँ।

❋ नाग से बँधी हुई सुन्दर जटा है, हाथों में कृपाण, अभय और त्रिशूल धारण किए हैं, तीन नेत्र हैं, पाँचों मुख मुस्कान-युक्त हैं, उज्ज्वल श्वेत कमल पर विराजमान हैं और व्याघ्रचर्म का वस्त्र पहने हैं—ऐसे देवाधिदेव भगवान् शम्भु को मैं सुधापूर्ण ग्यारहवाँ पात्र अर्पित करता हूँ।

जब मैं तुमसे प्रथम बार मिला था, तभी मुझको इसका आभास हो गया था कि तुम इस मार्ग पर चलने के अधिकारी हो। यह विद्या प्राचीन मर्यादा के अनुसार कानों-कान ही चलती है। मुझे भी इसको आगे बढ़ाना था। इन पाँच वर्षों में मैंने तुम्हें इसका पात्र बनाया। आज तुम दोनों को मैंने अपना सब कुछ दे दिया। मैंने स्वयं बहुत कुछ सोचा था, और कुछ किया भी—जो कार्य अपूर्ण रह गये हैं, उनकी पूर्ति तुम्हारे ही द्वारा होगी। तुम्हें देवता बनकर ही देवता की आराधना करनी है। इसके लिए तुम्हें चेष्टाएँ करनी पड़ेंगी। तुम्हारे सामने अनेक विघ्न और बाधाए आएँगी, परन्तु तुम्हारी शक्ति तुम्हारे साथ है। वह सदैव ही तुम्हारी रक्षा करेगी। अन्तिम लक्ष्य तो यही है कि तुम सांसारिक बन्धनों से विरक्त हो जाओ और यह मार्ग भी निवृत्ति का ही है। परन्तु मैं नहीं चाहूँगा कि तुम कई वर्षों तक उस स्थिति में पहुँचो। सम्भवतः तुम्हारे द्वारा बहुत कार्य होंगे और उसके लिए यह आवश्यक ही है कि तुम विरक्त भाव रखते हुए भी संसार के प्रपंचों से दूर न रहो। अम्बिका को मैंने तुम्हारे हृदय में स्थापित कर दिया है। वे ही अब भविष्य में तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेंगी। मेरे आशीर्वाद तो तुम दोनों के साथ सर्वदा रहेंगे ही।'

इतना कह कर आचार्य चुप हो गए। 'देवता' का शब्द सुनकर मैं विचार-सागर में पड़ गया, परन्तु अब वह उतना भयावह प्रतीत नहीं हुआ, जितना पहिले लगता था।

आचार्य ने शान्तिस्तोत्र पढ़ कर पूजन का विसर्जन किया। फिर भी 'देवता' का शब्द मेरे कानों में गूँज रहा था।

उस निशा को भी वर्षों हो गए, जिसमें आचार्य ने मुझे महाशक्ति की गोपनीय साधना में प्रवेश कराया था। इस बीते काल में बहुत कुछ सामने आया और बहुत कुछ झेला। यह अवश्य है कि मैं मार्ग पर निरन्तर बढ़ता रहा हूँ, चाहे वह कितना ही दुर्गम और काँटों से भरा रहा हो। अब भी देवत्व की खोज है। उससे कितनी दूर हूँ, यह नहीं कह सकता।



मुद्रक—कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, २४३ चक, इलाहाबाद।

